सिंहगढ़–विजय

तथा

अन्य कहानियाँ

लेखक

आचार्य चतुरसेन शास्त्री

प्रकाशक

भारती (भाषा) भवन

चर्खेवालान, दिल्ली

द्वितीयावृत्ति

सं० १९५१ ई०

सं० २००८ वि०

मूल्य २)
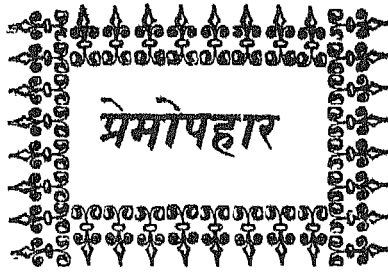
प्रेमोपहार

कुछ

इस संग्रह में मेरी सिर्फ वे ही कुछ कहानियाँ इकट्ठी हैं, जिन्हें पढ़ने से अतीत भारत का एक अस्पष्ट, किंतु वेदना-विह्वल छाया-चित्र पाठकों की आँखों को कदाचित् कुछ आर्द्र कर सके। इन कहानियों में ऐतिहासिक सत्य कम है, भावना और कल्पना से तत्कालीन ओजपूर्ण जीवन की रेखायें खींची गई हैं। ये रेखाएँ यदि पाठकों के हृदयों पर प्रतिबिंबित होकर उनके रक्त में एक जीवन और उमंग की लहर पैदा कर सकें, तो मुझे आनंद होगा।

संजीवन-इंस्टीट्यूट
दिल्ली-शाहदरा

चतुरसेन वैद्य

सूची

सिंहगढ़-विजय

(१)

रात बहुत अँधेरी थी। रास्ता पहाड़ी और ऊबड़-खाबड़ था। आकाश पर बदली छाई हुई थी, और अभी कुछ देर पूर्व जोर की वर्षा हो चुकी थी। जब जोर की हवा से वृक्ष और बड़ी बड़ी घास साँय-साँय करती थी, तब जंगल का सन्नाटा और भी भयानक मालूम होता था।

उस समय उस जंगल में दो घुड़-सवार बढ़े चले जा रहे थे। दोनों के घोड़े खूब मजबूत थे, पर वे पसीने से लथपथ थे। घोड़े पग-पग पर ठोकरें खाते थे, पर उन्हें ऐसे बीहड़ रास्तों में, ऐसे संकट के समय, अपने स्वामी को ले जाने का अभ्यास था। सवार भी असाधारण धैर्यवान् और वीर पुरुष थे। वे चुपचाप चल रहे थे। घोड़ों की टापों और उनकी प्रगति से कमर में लटकती हुई उनकी तलवारों और बर्छों की खरखराहट उस सन्नाटे के आलम में एक भय-पूर्ण रव उत्पन्न करती थी।

हठात् घोड़े ने एक ठोकर खाई, और एक मंद आर्तनाद अग्रगामी सवार के कान में पड़ा। उसने घोड़े की बाग खींचते हुए कहा—"धाँधूजी ?"

"महाराज !" पीछेवाला सवार क्षण-भर में अग्रगामी सवार के सन्निकट आ गया, और उसने बिजली की भाँति अपनी तलवार खींच ली। अग्रगामी सवार का घोड़ा खड़ा हो गया था। उसने भी तलवार नंगी करके कहा—"देखो, क्या है ? घोड़े ने ठोकर खाई है, यह आर्तनाद कैसा है ?"

धाँधूजी घोड़े से उतर पड़े, उन्होंने झुककर देखा और कहा—"महाराज, एक मनुष्य है।"

"क्या घायल है ?"

"खून में लथपथ प्रतीत होता है।"

"जीवित है ?"

इसी समय पड़े हुए व्यक्ति ने फिर आर्तनाद किया। महाराज उत्तर की प्रतीक्षा किए विना ही घोड़े से कूद पड़े। उन्होंने धाँधूजी को प्रकाश करने का आदेश दिया, और स्वयं मार्ग में पड़े व्यक्ति के सिरहाने घुटनों के बल बैठ गए। उन्होंने उसका सिर गोद में रख लिया, नाड़ी देखी, हृदय का स्पंदन देखा और कहा—"जीवित है, पर मालूम होता है, बहुत घाव खाए हैं, रक्त बहुत निकल गया है।"

धाँधूजी ने तब तक चकमक पत्थर से अबरख की बनी चोर-लालटेन जला ली थी। वह उसे घायल के मुख के पास लाए। देखकर कहा—"अरे, बड़ा अल्पवयस्क बालक है !"

"परंतु अंग में घाव हैं, मालूम होता है, वीरता-पूर्वक युद्ध किया है।"

मुमूर्षु ने प्रकाश और मनुष्य-मूर्ति को देखा, और जल का संकेत किया। महाराज ने स्वयं उसके मुख में जल डाला। जल पीकर उसने आँखें खोलीं, और क्षीण स्वर में कहा—"आप कौन हैं प्राण-रक्षक ?" और फिर कुछ ठहर कर कहा—"आप चाहे भी जो हों, यह प्राण और शरीर आपके हुए।" उसके होठों पर मंद हास्य की रेखा आई।

महाराज ने कहा—"धाँधूजी, इसका रक्त बंद होना चाहिए। देखिये, सिर से अब तक रक्त बह रहा है। और, पार्श्व का यह घाव भी भयानक है।" इसके बाद दोनों व्यक्तियों ने उसके सभी घाव बाँधकर उसे स्वस्थ किया। फिर वे सलाह करने लगे—"अब इसे कहाँ ले जाया जाय ? समय कम है और हमारा गंतव्य पथ लंबा।"

युवक ने स्वयं कहा—"यदि मुझे घोड़े पर बैठा दिया जाय, तो मैं मजे में चल सकूँगा।"

"क्या निकट कोई गाँव है ?"

"है, पर एक कोस के लगभग है।"

"वहाँ कोई मित्र है ?"

"हैं। वहाँ मेरी बहन का घर था, बहनोई हैं।" युवक का स्वर कंपित था।

महाराज ने कहा—"बहन नहीं है ?"

"नहीं।" युवक का कंठ अवरुद्ध हुआ। उसके नेत्रों से झर-झर आँसू बहने लगे। वह फिर बोला—"उसे आज तीसरे पहर बिदा कराके घर ले आ रहा था। बहनोई उस बाग़ तक साथ आये थे। उन्हें लौटते देर न हुई, ज्यों ही हम लोग इस खेड़े के निकट पहुँचे, कोई पाँच सौ यवन सैनिकों ने धावा बोल दिया। मेरे साथ केवल आठ आदमी थे। शायद सभी मारे गए। मैंने यथासाध्य विरोध किया, पर कुछ न कर सका, वे बहन का डोला ले आए! मैंने मूर्छित होने से प्रथम अच्छी तरह देखा, पर मैं तलवार पकड़ ही न सका, फिर मेरी तलवार टूट भी गई थी।" युवक उद्वेग से मानो मूर्छित हो गया।

महाराज ने होंठ चबाया। एक बार उन्होंने अपने सिंह के समान नेत्रों से उस चोर-लालटेन के प्रकाश में चारों ओर देखा—टूटी तलवार, बर्छा, दो-चार लाशें और रक्त की धार। उन्होंने युवक से कहा—"तुम्हारे घर पर कौन है?"

"वृद्धा विधवा माता।"

"गाँव कौन है?"

"मौरावाँ।"

"दूर है?"

"आठ कोस होगा।"

"तुम्हारा नाम?"

"तानाजी।"

"घोड़े पर चढ़ सकोगे ?"

"जी ।"

महाराज और धाँधूजी ने युवक को घोड़े पर लादा । धाँधूजी उसके पीछे बैठे, और महाराज भी अपने घोड़े पर सवार हुए। इस बार ये यात्री अपना पथ छोड़कर युवक के आदेशानुसार गाँव की ओर बढ़े, पगडंडी सकरी और बहुत ख़राब थी । जगह-जगह पानी भरा था, पर जानवर सधे हुए और बहुत असील थे । धीरे-धीरे गाँव निकट आ गया । युवक के बताए मकान के द्वार पर जाकर धाँधूजी ने थपकी दी । एक युवक ने आकर द्वार खोला । धाँधूजी ने उसकी सहायता से घायल तानाजी को उतार कर घर में पहुँचाया । संक्षेप में दुर्घटना का हाल सुनकर गृह-पति युवक मर्माहत हुआ, धाँधूजी ने अवकाश न देखकर कहा—"तुम लोग परसों इसी समय हमारे यहाँ आने की प्रतीक्षा करना और घटना का कहीं भी ज़िक्र न करना ।"

तानाजी ने व्यग्र होकर कहा—"महोदय, आपका परिचय ? मैं किसके प्रति कृतज्ञ होऊँ ?"

"छत्रपति हिंदू-कुल-सूर्य महाराजाधिराज शिवाजी के प्रति ।"

धाँधूजी ने अब विलंब न किया, वह लपककर घोड़े पर चढ़े, और दोनों असाधारण सवार उस अंधकार में विलीन हो गये ।

(२)

पूना से पश्चिम ओर, विंध्याचल-शृंग के एक दुरूह शिखर पर, एक अति प्राचीन, शायद बौद्धकालीन, गुफा है ।

उसके निकट घने वृक्षों का झुरमुट है। एक अमृत के समान मीठे पानी का झरना भी है। इसी गुफा के सम्मुख, कोई एक तीर के अंतर पर, एक विस्तृत मैदान है। उसे ख़ास तौर पर साफ़ और समतल बनाया गया है।

वहाँ एक बलिष्ठ युवक बर्छा फेकने का अभ्यास कर रहा था। युवक गौर-वर्ण, सुंदर, ठिंगना और लोहे के समान ठोस था। उसने अपने सुगठित हाथों में बर्छा उठाया, और तौल कर एक वृक्ष को लक्ष्य करके फेका। बर्छा वृक्ष को चीरता हुआ पार निकल गया। गंभीर स्वर में किसी ने कहा—"ठीक नहीं हुआ, तुम्हारा लक्ष्य चलित हो गया।"

युवक ने माथे का पसीना पोंछकर पीछे फिरकर देखा। एक जटिल सन्यासी तीव्र दृष्टि से युवक को ताक रहे थे। युवक ने सिर झुका लिया। सन्यासी अग्रसर हुए। उन्होंने बर्छे को क्षण भर तोला, और विद्युत-वेग से फेक दिया। बर्छा स्थूल वृक्ष को चीरता हुआ क्षण-भर ही में धरती में घुस गया। उत्साहित होकर युवक ने एक ही झटके में बर्छा उखाड़ा, और महावेग से फेंका। इस बार बर्छा वृक्ष को चीरकर धरती में घुस गया। सन्यासी ने मुस्किराते हुए कहा—"हाँ, यह कुछ हुआ। वत्स, मैं तो वृद्ध हुआ, युवक-सा पौरुष कहाँ ? हाँ, तुम अभी और भी स्फूर्ति उत्पन्न करो।"

युवक ने गुरु के चरणों में प्रणाम किया, और दोनों ने तलवारें निकाल लीं। प्रथम मंद फिर वेग और उसके बाद

चंड गति से दोनों गुरु-शिष्य तलवारें चलाने लगे, मानो बिजलियाँ टकरा रही हों। दोनों महाप्राण पुरुष पसीने से लथ-पथ हो गए। श्वास चढ़ गया, परंतु उनका युद्ध-वेग कम न हुआ। दोनों ही चीते की भाँति उछल-उछल कर वार कर रहे थे। तलवारें झनझना रही थीं। गुरु ने ललकार कर कहा—"बेटे, लो, एक सच्चा वार तो करो। देखें शत्रु को तुम किस भाँति हनन करोगे।"

युवक ने आवेश में आकर संन्यासी के मोढ़े पर एक भरपूर वार किया। सन्यासी ने कतराकर एक जनेवा का हाथ जो दिया, तो युवक की तलवार झन्नाकर दस हाथ दूर जा पड़ी। सन्यासी ने युवक के कंठ पर तलवार रख कर कहा—"वत्स, बस यही तुम्हारा कौशल है? इस समय शत्रु क्या तुम्हें जीवित छोड़ता?"

युवक ने लज्जा से लाल होकर गुरु के चरण छुए, और फिर तलवार उठा ली। इस बार उसने अंधाधुंध वार किए, पर संन्यासी मानो विदेह पुरुष हैं। उनका शरीर मानो देव-कवच से रक्षित था। वह वार बचाते, युवक को सावधान करते और तत्काल उसके शरीर पर तलवार छुवा देते थे। अंत में युवक का दम बिलकुल फूल गया। उसने तलवार गुरु के चरणों में रख दी, और स्वयं भी लोट गया गुरु ने उसे छाती से लगाया और कहा—"वत्स, आज ही श्रावणी पूर्णिमा है, महाराज अभी आते होंगे। आज तुम्हें इस सन्यासी को त्यागना होगा। और जिस पवित्र व्रत को तुमने लिया है,

उसमें अग्रसर होना होगा। यद्यपि में जैसा चाहता था, वैसा तो नहीं, पर फिर भी तुम पृथ्वी पर अजेय योद्धा हो, तुम्हारी तलवार और बर्छे के सम्मुख कोई वीर स्थिर नहीं रह सकता।"

युवक फिर गुरु-चरणों में लोट गया। उसने कहा—"प्रभो, अभी मुझे और कुछ सेवा करने दीजिये।"

"नहीं, वत्स, अभी तुम्हें बहुत कार्य करना है, उसकी साधना ही मेरी चरण-सेवा है।"

हठात् वज्र-ध्वनि हुई—"छत्रपति महाराज शिवाजी की जय!"

दोनों ने देखा, महाराज घोड़े से उतर रहे हैं। उन्होंने धीरे-धीरे आकर, सन्यासी की चरण-रज ली, और सन्यासी ने उन्हें उठाकर आशीर्वाद दिया। युवक ने आकर, महाराज के सम्मुख घुटनों के बल बैठकर प्रणाम किया। महाराज ने कहा—"युवक, आज वही श्रावणी पूर्णिमा है।"

"जी।"

"आज उस घटना को तीन वर्ष हो गए, जब तुम्हें घायल करके शत्रु तुम्हारी बहन को हरण कर ले गये थे तुम्हें स्मरण है?"

"हाँ महाराज, और आपने मुझे जीवन-दान दिया था, मैंने यह प्राण और शरीर आपकी भेंट किये थे।"

"और तुमने प्रतिशोध की प्रतिज्ञा की थी?"

"जी हाँ।"

"मैंने तुम्हें गुरुजी की सेवा में तीन वर्ष के लिये इसलिये रक्खा था कि तुम शरीर, आत्मा और भावना के गंभीर एवं दृढ़ बनो, तामसिक क्रोध का नाश करो, सात्त्विक तेज की ज्वाला से प्रज्वलित होओ।"

"हाँ महाराज, गुरु-कृपा से मैंने आत्मशुद्धि की है।"

"और अब तुम वैयक्तिक स्वार्थ के दास तो नहीं ?"

"नहीं प्रभो।"

"प्रतिशोध लोगे ?"

"अवश्य।"

"अपनी बहन का ?"

"नहीं, एक हिंदू अबला की स्वतंत्रता-हरण का, मर्यादारहित पाप का।"

"और तुममें वह शक्ति है ?"

"गुरु-चरणों की कृपा और महाराज की छत्रच्छाया में मैं उसे प्राप्त करूँगा।"

"तुम्हारी तलवार में धार है ?"

"है।"

"और तुम्हारी कलाई में उसे धारण करने की शक्ति ?"

"है।"

"समय की प्रतीक्षा का धैर्य ?"

"प्रतीक्षा का धैर्य ?" युवक ने अधीर होकर कहा।

"हाँ, धैर्य ?" महाराज ने कठोर स्वर में कहा।

युवक का मस्तक झुक गया, और उसके नेत्रों से आँसुओं की धारा बह चली। उसने कहा—"महाराज, धैर्य तो नहीं है।" वह महाराज के चरणों में गिर गया।

महाराज ने उठाकर उसे छाती से लगाया। वह सन्यासी की ओर देखकर हँस दिये। उन्होंने कहा—"गुरु की क्या आज्ञा है ?"

"ताना तैयार है, मैंने उसे गुरु-दीक्षा दे दी है।" फिर कहा—"वत्स !"

युवक ने गुरु की ओर आँखें उठाईं। वह अब भी आँसुओं से तर थीं।

"शांत हो, देखो, सदैव कर्तव्य समझकर कार्य करना। फल की चिंतना न करना।" युवक चुप रहा।

"यदि फल की आकांक्षा करोगे, तो धैर्य से च्युत हो जाओगे और कदाचित् कर्तव्य से भी।"

"प्रभो मैं अपनी भूल समझ गया।"

"जाओ पुत्र, महाराज की सेवा में रहो, विजयी बनो। भारत के दुर्भाग्य को नष्ट करो। नवीन जीवन, नवीन युग का प्रवर्तन करो। धर्म, नीति, मर्यादा और सामाजिक स्वातंत्र्य के लिए प्राण और शरीर एवं स्वार्थों का विसर्जन करो।"

युवक ने गुरु-चरणों में मस्तक नवाया। सन्यासी के नेत्रों में आँसू आ गए। उन्होंने कहा—"वत्स, जाओ, जाओ।

सन्यासी को अधिक आप्यायित न करो। वीतराग सन्यासी किसी के नहीं।"

इसके बाद उन्होंने महाराज से एक संकेत किया। महाराज सन्यासी को अभिवादन कर घोड़े पर चढ़े। एक घोड़े पर युवक चढ़ा, और धीरे-धीरे वे उस पर्वत-शृंग से उतर चले।

सन्यासी शिला-खंड की भाँति अचल रहकर उन्हें देखते रहे, जब तक कि वे आँख से ओझल नहीं हो गए।

(२)

ग्राम में बड़ा कोलाहल था। बालक धूम मचा रहे थे। और, विविध वस्त्र पहने स्त्री-पुरुष काम-काज में व्यस्त इधर से उधर दौड़-धूप कर रहे थे। तानाजी का विवाह था। द्वार पर नौबत झर रही थी। आगत जनों की काफी भीड़ थी।

संध्या होने में अभी विलंब था। एक श्रमिक, शिथिल साँड़नी-सवार ने नगर में प्रवेश किया। थोड़े-से बालक कौतूहल-वश उसके पीछे हो लिए। ग्राम के चौराहे पर जाकर उसने अपनी बग़ल से छोटी-सी तुरही निकाल कर फूँकी। देखते-देखते दस-बीस नर-नारी और बहुत-से बालक एकत्र हो गए। सवार ने एक वृद्ध को लक्ष्य करके कहा—"मुझे तानाजी के मकान पर अभी पहुँचना है।"

तुरंत दस-पाँच आदमी साथ हो लिए। सम्मुख ही तानाजी का घर था। वहाँ पहुँच कर उसने फिर तुरही बजाई। कोला-हल बंद हो गया। सभी व्यग्र होकर आगंतुक को देखने लगे।

उसने ज़रा उच्च स्वर से पुकारकर कहा—"छत्रपति शिवाजी महाराज की जय हो! मैं तानाजी के पास महाराज का अत्यावश्यक संदेश लेकर आया हूँ। अभी तानाजी से मुलाक़ात न होने से महाराज विपत्ति में पड़ेंगे।" उपस्थित जन-मंडल ने चिल्लाकर कहा—"छत्रपति महाराज की जय!"

हल्दी से शरीर लपेटे, ब्याह का कँगना हाथ में बाँधे तानाजी बाहर निकल आए। धावन ने उन्हें पत्र दिया। पत्र पढ़ कर तानाजी क्षण-भर को विचलित हुए। इसके बाद ही उन्होंने अग्निमय नेत्रों से उपस्थित जन-समूह को देखा। वह उछलकर एक ऊँचे स्थान पर चढ़ गए, और उन्होंने गंभीर, उच्च स्वर से कहना प्रारंभ किया—"सज्जनो! महावीर छत्रपति महाराज ने मुझे इसी क्षण बुलाया है। बीजापुर-शाह महाराज पर चढ़ दौड़े हैं। यह शरीर और प्राण महाराज का है। फिर बहन के प्रतिशोध का भी यही सहयोग है। मैं इसी क्षण जाऊँगा। आप लोग कल प्रातः काल ही प्रस्थान करें। विवाह-समारोह अनिश्चित समय के लिए स्थगित किया गया।"

तानाजी बिना उत्तर की प्रतीक्षा किये चीते की भाँति उछल-कर कूद पड़े, और घर में चले गये। कुछ ही क्षण बाद वह अपने प्यारे बर्छे और विशाल तलवार के साथ सज्जित होकर घोड़े पर सवार हुए। विवाह का आनंद-समारोह स्तब्ध हो गया। पिता और गुरुजन को प्रणाम कर उन्होंने बढ़ते हुए

संध्या के अंधकार में डूबते हुए सूर्य को लक्ष्य कर उन दुर्गम पर्वत-उपत्यकाओं में घोड़ा छोड़ दिया।

(४)

"महाराज की जय हो, मेरी एक बिनती है।"

"क्या कहते हो ?"

"बीजापुर की सेना परसों अवश्य ही दुर्ग पर आक्रमण करेगी।"

"सो तो सुन चुका हूँ।"

"दुर्ग की पूरी मरम्मत नहीं हो पाई है, ऐसी दशा में वह आक्रमण न सह सकेगा।"

"मालूम तो ऐसा ही होता है।"

"परंतु कल संध्या तक दुर्ग बिलकुल सुरक्षित हो जायगा।"

"यह तो अच्छी बात है।"

"परंतु महाराज, अपराध क्षमा हो।"

"कहो।"

"एक निवेदन है।"

"क्या ?"

केवल एक-एक मुट्ठी चना मेरे सैनिकों और मजदूरों को मिल जाय, तो फिर वे कल संध्या तक और कुछ नहीं चाहते।"

"यह तो तुम जानते ही हो, वह मैं न दे सकूँगा।"

तानाजी चुप रहे। महाराज भी चुप हो गए। वह चंचल गति से इधर-उधर घूमने लगे।

एक प्रहरी ने सम्मुख आकर कहा—"महाराज, एक फिरंगी दुर्ग-द्वार पर उपस्थित है, दर्शनों की इच्छा करता है।"

महाराज ने चकित होकर कहा—"फिरंगी ? वह कहाँ से आया है ?"

"सूरत से आ रहा है।"

"साथ में कौन है ?"

"दो सवार हैं।"

"क्या चाहता है ?"

"महाराज से मुलाक़ात करना।"

क्षण-भर महाराज ने कुछ सोचा, इसके बाद तानाजी को आज्ञा दी—"उसे महल के बाहरी कक्ष में ले आओ।" तानाजी ने 'जो आज्ञा' कहकर प्रस्थान किया, और महाराज भी कुछ सोचते हुए महल की ओर चले गए।

* * *

"तुम्हारा देश क्या है ?"

"मैं फ्रांस देश का अधिवासी हूँ।"

"क्या चाहते हो ?"

"महाराज, मैं कुछ हथियार बीजापुर के बादशाह के हाथ बेचने लाया था, परंतु यहाँ आने पर आपकी यशोगाथा का विस्तार प्रजा में सुन कर इच्छा होती है, वे हथियार मैं आपको दे दूँ, यदि महाराज प्रसन्न हों। मेरे पास ५० तो छोटी विलायती तोपें, ५ हजार बंदूक़ें और इतनी ही तलवारें हैं। सभी

हथियार फ्रांस देश के बने हुए हैं। और भी युद्ध-सामग्री है।"

महाराज ने मंद हास्य से पूछा—"उनका मूल्य क्या है ?"

"महाराज को मैं यह सब १० लाख रुपये में दे दूँगा। यद्यपि माल बहुत अधिक मूल्य का है।"

महाराज की दृष्टि विचलित हुई। परंतु उन्होंने दृढ़, गंभीर स्वर से कहा—"मैं कल इसी समय इसका उत्तर दूँगा। अभी तुम विश्राम करो।"

फिरंगी चला गया। महाराज अत्यंत चंचल गति से टहलने लगे। रात्रि का अंधकार आया।" तानाजी मसालें लिये क़िले की मरम्मत में संलग्न थे। महाराज ने उन्हें बुलाकर कहा—"तानाजी, अब समय आ गया। अभी सारी सेना को तैयार होने का आदेश दे दो।"

"जो आज्ञा महाराज, कूच कहाँ करना होगा ?"

"इस फिरंगी का जहाज लूटना होगा।"

तानाजी आँखें फाड़-फाड़कर देखने लगे। क्षण-भर बाद बोले—'महाराज की जय हो! यह क्या आज्ञा दे रहे हैं ?"

महाराज ने लपककर, तानाजी की कलाई कसकर पकड़ ली। उन्होंने कहा—"युवक सेनापति! देखते हो, दुर्ग छिन्न-भिन्न और अरक्षित है। सेना के पास न शस्त्र, न घोड़े और खजाने में इनको देने के लिए एक मुट्ठी चना भी नहीं। उधर विजयिनी यवन-सेना बीजापुर से धावा मारकर आ रही है। क्या मैं समय और उपाय रहते पिस मरूँ ? ये हथियार

भवानी ने मुझे दिए हैं। छोड़ूँगा कैसे ? उस फिरंगी को क़ैद कर लो। उसे रुपया देकर मुक्त कर दिया जायगा। जाओ, सेना को अभी तैयार होने का आदेश दो। ठीक दो पहर रात्रि व्यतीत होते ही कूच होगा।"

तानाजी कुछ कह न सके। वह सेना को आदेश देने चल दिए।

(५)

महाराज बैठे-बैठे ऊँघ रहे थे। पीछे दो शरीर-रक्षक चुपचाप खड़े थे। तानाजी ने सम्मुख आकर कहा—"महाराज की जय हो, कूच का समय हो गया है, सेना तैयार है।"

महाराज चौंककर उठ बैठे। वह चमत्कृत थे। उन्होंने कहा—"तानाजी ?"

"महाराज।"

"मुझे भवानी ने स्वप्न में आदेश दिया है।"

"वह कैसा आदेश है महाराज !"

"यह सम्मुख मंदिर की पीठ दिखाई पड़ती है न ?"

"हाँ, महाराज।"

"अभी मैं बैठे-बैठे सो गया, इसमें वह जो मोखा है, उसमें से एक रत्न-जटित गहनों से लदा हुआ हाथ निकल कर इसी स्थान की ओर संकेत करता है, मैंने स्पष्ट सुना, किसी ने कहा, यहीं खोदो।"

"महाराज की क्या आज्ञा है ?"

"भवानी का आदेश अवश्य पूरा होना चाहिये। उस स्थान को खुदवाओ।"

तत्काल चार बेलदारों ने खोदना प्रारम्भ किया। देखते-देखते बड़ा भारी गहरा गड्ढा हो गया। मिट्टी का ढेर लग गया। तानाजी ने ऊबकर कहा—"महाराज, अब केवल एक पहर रात्रि रही है।"

"ठहरो, क्या नीचे मिट्टी-ही-मिट्टी है?"

भीतर से एक बेलदार ने चिल्लाकर कहा—"महाराज! पत्थर पर कुदाल लगा है।"

महाराज ने व्यग्र स्वर में कहा—"सावधानी से खोदो।"

"महाराज की जय हो! नीचे पटिया है। उसमें एक लोहे का भारी कुण्डा है।"

"उसे बल-पूर्वक उखाड़ लो।"

"महाराज, नीचे सीढ़ियाँ प्रतीत होती हैं। प्रकाश आना चाहिए।"

प्रकाश आया। तानाजी नंगी तलवार लेकर गड्ढे में कूद गए। दो और भी वीर कूद गए। महाराज विकलता से खड़े गंभीर प्रतीक्षा करते रहे।

तानाजी ने बाहर आकर वस्त्रों की धूल झाड़ते हुए अपनी तलवार ऊँची की। और फिर तीन बार खूब जोर से कहा—"छत्रपति महाराज शिवाजी की जय!" निकट खड़ी सेना प्रलय-गर्जन की भाँति चिल्ला उठी—"छत्रपति महाराज की जय!"

इसके बाद तानाजी महाराज के निकट खड़े हो गए।

"महाराज ने पूछा—'भीतर क्या है ?"

"भवानी का प्रसाद है।"

"कितना है ?"

"चालीस देगें मुहरों की भरी रक्खी हैं। चाँदी के सिक्के भी इतने ही हैं। एक चाँदी की संदूक़ची में वहुत-से रत्न हैं।"

महाराज एक बार प्रकंपित वाणी से चिल्ला उठे—"जय भवानी माता की !" एक बार फिर वज्र-गर्जन हुआ। इसके बाद महाराज ने तानाजी को आदेश दिया—"सेना को विश्राम की आज्ञा दी जाय। और सब ख़ज़ाना सुरक्षित रूप से निकालकर तोशाखाने में दाख़िल कर दिया जाय।"

(६)

नगर के गण्य-मान्य जौहरी बैठे थे। वहीं चाँदी की संदूक़ची सम्मुख रक्खी थी। महाराज ने कहा—"इसका क्या मूल्य है ?"

"महाराज, इसका मूल्य कूतना असंभव है। यह मोतियों की माला ही अकेली दस लाख से कम मूल्य की नहीं।"

महाराज ने उन्हें विदा करके उस फ्रेंच को बुलाकर कहा—"क्या तुम इन रत्नों का कुछ मूल्य आंकित कर सकते हो ?"

फिरंगी रत्नों की राशि देखकर दंग रह गया। उसने बड़े ध्यान से मोतियों की माला को देखकर कहा—"यदि महाराज की आज्ञा हो, तो मैं इस अकेली माला के बदले में अपने संपूर्ण हथियार दे सकता हूँ।"

महाराज मुस्किराए। उन्होंने कहा—"उसे तुम रख लो, मेरे निकट वह कंकड़-पत्थर के समान है। वे सभी हथियार और सामग्री मुझे आज संध्या से पूर्व ही मिल जानी चाहिए"।"

"जो आज्ञा महाराज।" फिरंगी चला गया।

* * *

चोबदार ने प्रवेश करके कहा—"महाराज की जय हो! एक चर सेवा में उपस्थित हुआ चाहता है?"

"उसे अभी भेज दो।"

चर ने महाराज के चरणों में सिर झुकाया।

"तुम हो महाभद्र।"

"महाराज की जय हो, सेवक इसी क्षण सुसमाचार निवेदन किया चाहता है।"

"क्या समाचार है?"

"बीजापुर-शाह का ख़ज़ाना इसी मार्ग से जा रहा है।"

"कितना ख़ज़ाना है?"

"पैंतीस खच्चर मुहरें हैं।"

"सेना कितनी है?"

"पाँच हज़ार।"

"शेष सेना कहाँ है।"

"वह सिंहगढ़ में महाराज पर आक्रमण की तैयारी में सन्नद्ध है! ख़ज़ाना पहुँचा, और आक्रमण हुआ।"

"निश्चिन्त रहो, ख़ज़ाना वहाँ कभी न पहुँचेगा। जाओ तानाजी

को भेज दो, और स्वयं यह पता लगाओ कि खज़ाना आज दो-पहर रात तक कहाँ पहुँचेगा ?"

जो आज्ञा कहकर चर ने प्रस्थान किया।

क्षण-भर बाद तानाजी ने प्रवेश कर कहा—"महाराज की क्या आज्ञा है ?"

"क्या वे हथियार सब मिल गए ?"

"जी महाराज !"

"तोपें कैसी हैं ?"

"अत्युत्तम, वे सभी बुर्जियों पर चढ़ा दी गईं।"

"बंदूक़ें ?"

"सब नई और उत्तम हैं। सब बंदूक़ें, बर्छे और तलवारें भी बाँट दी गई हैं।"

"तुम्हारे पास कुल कितने घुड़-सवार हैं ?"

"सिर्फ़ पाँच सौ।"

"शेष।"

"शेष सब अशिक्षित किसानों की भीड़ है। उन्हें शस्त्र अवश्य मिल गए हैं, परन्तु उन्हें चलाना कदाचित् वे नहीं जानते।"

"बहुत ठीक, बीजापुर-शाह का खज़ाना सिंहगढ़ जा रहा है। वह अवश्य वहाँ न पहुँचकर यहाँ आना चाहिए। परंतु उसके साथ पाँच हज़ार चुने हुए सवार हैं। तुम अभी पाँच सौ सैनिक लेकर उनपर धावा बोल दो।"

"जो आज्ञा।"

"परंतु युद्ध न करना, जैसे बने, उन्हें आगे बढ़ने में बाधा देना।

"जो आज्ञा।"

"मैं प्रभात होते-होते समस्त पैदल सेना-सहित तुमसे मिल जाऊँगा।"

"जो आज्ञा।"

तानाजी ने तत्काल कूच कर दिया।

(७)

दुपहरी की तीव्र सूर्य-किरणों में धूल उड़ती देख कर यवन-सैनिक सजग हो गए। उनके सरदार ने ललकारकर व्यूह-रचना की, और खच्चरों को खास इंतज़ाम में रखकर मोर्चेबंदी पर डट गए। कूच रोक दिया गया।

तानाजी धुआँधार बढ़े चले आ रहे थे। दोपहर होते-होते ही उन्होंने खज़ाना धर दबाया था। उन्होंने देखा, यवन-दल कूच रोककर, मोर्चा बाँध कर युद्ध-सन्नद्ध हो गया है। तानाजी ने भी आक्रमण रोककर वहीं मोर्चा डाल दिया। यवन-दल ने देखा—शत्रु जो धावा बोलता हुआ पीछा कर रहा था, आक्रमण न करके वहीं मोर्चा बाँधकर रुक गया है। इसके क्या माने? यवन-सेनापति ने स्वयं आक्रमण कर दिया।

यवन-सेना को लौटाकर धावा करते देख तानाजी ने शीघ्रता से पीछे हटना प्रारम्भ कर दिया। दो-तीन मील तक पीछा करने

पर भी जब शत्रु भागता ही चला गया, तब यवन-सेनापति ने आक्रमण रोककर सेना की शृंखला बना फिर कूच कर दिया।

परंतु यह देखते ही तानाजी फिर लौटकर यवन-सेना का पीछा करने लगे। यवन-सेनापति ने यह देखा। उसने सोचा, डाकू घात लगाने की चिंता में है। उसने क्रुद्ध होकर फिर एक बार लौट कर धावा किया, पर तानाजी फिर लौट कर भाग चले।

संध्या-काल हो गया। यवन-सेनापति ने खीजकर कहा—"ये पहाड़ी चूहे न लड़ते हैं, और न भागते हैं, अवश्य अन्य सेना की प्रतीक्षा में हैं। साथ ही कम भी हैं", अतः उसने व्यवस्था की कि तीन हज़ार सेना के साथ ख़ज़ाना आगे बढ़े, और दो हज़ार सेना लेकर इन डाकुओं को यहाँ रोके रहे। इस व्यवस्था से आधी सेना के साथ ख़ज़ाना आगे बढ़ गया। शेष दो हज़ार सैनिकों ने वेग से तानाजी पर आक्रमण किया। तानाजी बड़ी फुर्ती से पीछे हटने लगे। धीरे-धीरे अंधकार हो गया। यवन-दल लौट गया। परन्तु चतुर तानाजी समझ गए कि ख़ज़ाना आगे बढ़ गया है। वह उपाय सोचने लगे। एक सिपाही ने घोड़े से उतर कर तानाजी की रकाब पकड़ी। तानाजी ने कहा—"क्या है?"

"आप जो सोच रहे हैं, उसका उपाय मैं जानता हूँ।"

"क्या उपाय है?"

"यहाँ से बीस कोस पर एक गाँव है।"

"फिर ?"

"वहाँ मेरे बहुत संबंधी हैं।"

"अच्छा।"

"उस गाँव के पास एक घाटी है, जिसके दोनो ओर दुरूह, ऊँचे पर्वत हैं, और बीच में सिर्फ दो सवारों के गुजरने योग्य जगह है। यह घाटी लगभग पौन मील लंबी है।"

तानाजी ने विचलित होकर कहा—"तुम चाहते क्या हो ?"

"यवन-सेना वहाँ प्रातःकाल पहुँचेगी।"

"अच्छा फिर ?"

"मैं एक मार्ग जानता हूँ, जिससे मैं पहर रात्रि गए वहाँ पहुँच सकता हूँ। श्रीमान्, मुझे केवल पचास सवार दीजिए। मैं गाँव वालों को मिला लूँगा, और घाटी का द्वार रोक लूँगा। यवन-दल रक्षा की धारणा से तुरंत घाटी में प्रवेश करेगा। पीछे से आप घाटी के मुख को रोक लीजिए। शत्रु चूहेदानी में मूसे के समान फँस जायँगे।"

तानाजी गंभीरता-पूर्वक सोचने लगे। अंत में उन्होंने कहा—"मैं तुम्हारी तजवीज पसंद करता हूँ। पचास सैनिक चुन लो।"

सिपाही ने पचास सैनिक चुनकर चुपचाप खेत की पगडंडी का रास्ता लिया। तानाजी ने यवन-दल पर फिर आक्रमण करने की तैयारी की।

(८)

स्तब्ध रात्रि के सन्नाटे को चीरकर तुरही का शब्द हुआ। सोए

हुए ग्रामवासी हड़बड़ाकर उठ बैठे। देखा, ग्राम के बाहर थोड़े-से घुड़-सवार खड़े हैं।

गाँव के पटेल ने भयभीत होकर पूछा—"तुम लोग कौन हो, और क्या चाहते हो?"

सैनिकों ने चिल्लाकर कहा—"हिन्दू-धर्म-रक्षक छत्रपति महाराज शिवाजी की जय।"

गाँव के निवासी भी चिल्ला उठे—"जय, महाराज शिवाजी की जय।"

एक सवार तीर की भाँति दौड़कर ग्राम-वासियों के निकट आया। उसने कहा—"सावधान रहो, छत्रपति महाराज शिवाजी ने हिंदू-धर्म के उद्धार का बीड़ा उठाया है, वह साक्षात् शिव के अवतार हैं। आज सूर्योदय होते ही तुम्हें उनके दर्शन होंगे।"

यह सुनते ही ग्राम-वासी चिल्ला उठे—"महाराज शिवाजी की जय।"

"पर सुनो, आज इस गाँव की परीक्षा है। भाइयो, यवन-सेना इधर को आ रही है। आज इसी गाँव में उनका अंत होगा, और वीरता का सेहरा इस गाँव के नाम बँधेगा।"

ग्राम-वासियों ने उत्साह से कहा—"हम तैयार हैं, हम प्राण देंगे।"

"भाइयो, हमारी विजय होगी। प्राण देने की आवश्यकता नहीं। अभी दो पहर का समय हमें है। आओ, घाटी का उस पार का द्वार वृक्षों और पत्थरों से बंद कर दें और सब लोग

पर्वतों पर चढ़कर छिप बैठें। बड़े-बड़े पत्थर इकट्ठे रक्खें, ज्यों ही यवन-दल घाटी में घुसे, देखते रहो। जब सब सेना घाटी में पहुँच जाय, ऊपर से पत्थरों की भारी मार करो। पीछे के मार्ग को महाराज शिवाजी स्वयं रोकेंगे। समस्त गाँव जय शिवाजी महाराज कहकर कार्य में जुट गया।

* * * *

प्रातःकाल होने से पूर्व ही यवन-दल तेजी से घाटी में घुसा। तानाजी पीछे धावा मारते आ रहे हैं, यह वे जानते थे। घाटी पार करने पर वे सुरक्षित रहेंगे, इसका उन्हें विश्वास था। परंतु एकबारगी ही आगे बढ़ती हुई सेना की गति रुक गई। बड़ी गड़बड़ी फैली। कहाँ क्या हुआ, यह किसी ने नहीं जाना। परंतु घाटी का द्वार भारी-भारी पत्थरों और बड़े-बड़े वृक्षों को काटकर बंद कर दिया गया था। उसको बाहर खड़े ग्रामवासी और सवार दरारों के द्वारा तीर छोड़ रहे थे।

सारी यवन-सेना में गड़बड़ी फैल गई। यवन-सेनापति ने पीछे लौटने की आज्ञा दी, परंतु अरे! यहाँ तानाजी की सेना मुस्तैदी से खड़ी तीर फेंक रही थी। अब एक और भारी विपत्ति आई। ऊपर से अगणित बाणों की वर्षा होने लगी, और भारी-भारी पत्थर लुढ़कने लगे। घोड़े, खच्चर, सिपाही सभी चकनाचूर होने लगे। भयानक चीत्कार मच गया। मुहाने पर दो-चार सिपाही आकर युद्ध करके कट गिरते थे। लाशों का ढेर हो रहा था।

यवन-सेनापति ने देखा, प्राण बचने का कोई मार्ग नहीं। सहस्रों सिपाही मर चुके थे। जो थे, वे क्षण-क्षण पर मर रहे थे। उसने तानाजी से कहला भेजा, ख़ज़ाना ले लीजिए, और हमारी जान बख़्श दीजिए।

तानाजी ने हँसकर कहा—"जान बख़्श दी जायगी, पर ख़ज़ाना, हथियार और घोड़े तीनो चीज़ें देना होगा।" विवश यही किया गया।

एक-एक मुग़ल सिपाही आता, घोड़ा और हथियार रखकर एक ओर चल देता। ग्राम-वासियों ने मार बंद कर दी थी। बहुत कम यवन-सैनिक प्राण बचा सके। घोड़े, शस्त्र और ख़ज़ाना तानाजी ने क़ब्ज़े में कर लिया। सूर्य की लाल-लाल किरणें पूर्व में उदय हुईं। तानाजी ने देखा, दूर से गर्द का पर्वत उड़ा आता है। उन्होंने सभी ग्राम-वासियों को एकत्र करके कहा—"सावधान रहो, महा-राज आ रहे हैं।"

* * * *

महाराज ने घोड़े से उतरकर तानाजी को गले से लगा लिया। ग्राम-वासियों ने महाराज की पूजा की, और लूटा हुआ सभी माल लेकर शिवाजी अपने क़िले में लौटे। इस प्रकार संयोग, प्रारब्ध और उद्योग ने सोलह पहर के अंतर में ही असहाय महाराज शिवाजी को सर्व-साधन-संपन्न बना दिया, जिसके बल पर वह अपना महाराज्य क़ायम कर सके।

(६)

स्तब्ध रात्रि के सन्नाटे में सैनिकों का प्रशांत दल चुपचाप आगे बढ़ा जा रहा था। सकरी पगडंडी के दोनो ओर ऊँचे-ऊँचे सरकंडे के झाड़ खड़े थे। तारों के क्षीण प्रकाश में घोड़ों को कष्ट होता था, पर सेना की अबाध गति जारी थी।

हठात् सैनिक रुक गए। अग्रगामी सैनिक ने पंक्ति से पीछे हटकर कहा—"श्रीमान्, बस यही स्थान है।"

"आगे रास्ता नहीं ?"

"नही श्रीमान्।"

"तब यहाँ से क्या उपाय किया जाय ?"

"इस ढालू चट्टान पर चढ़ना होगा।"

"यह बहुत कठिन है।"

"परंतु दूसरा उपाय ही नहीं है।"

"तब चढ़ो।" सेना-नायक चट्टान को दोनो हाथों से दृढ़ता से पकड़कर खड़ा हो गया।

देखते-देखते दूसरा सैनिक छलाँग मारकर चट्टान पर हो रहा, और सेना-नायक को खींच लिया। उस बीहड़ और सीधी खड़ी चट्टान पर धीरे-धीरे ये हठी सैनिक उस दुर्भेद्य अंधकार में चढ़ने लगे। दुर्ग-प्राचीर के निकट आकर नायक ने कहा—"अब रस्सियाँ चाहिए।"

"रस्सियाँ उपस्थित हैं।"

रस्सियों को फेंककर प्राचीर के कंगूरे में अटका दिया गया।

और क्षण-भर में नायक प्राचीर पर चढ़कर लेट गया। इसके बाद दूसरा और फिर तीसरा। इस प्रकार बारह सैनिक दुर्ग-प्राचीर पर चढ़कर, अवशिष्ट सैनिकों को समुचित आदेश देकर नीचे उतर गए। दुर्ग में सन्नाटा था। सब चुपचाप दीवारों की छाया में छिपते हुए फाटक की ओर बढ़ रहे थे। फाटक पर प्रहरी असावधान थे। एक ने सजग होकर पुकारा—"कौन ?"

दूसरे ही क्षण एक तलवार का भरपूर हाथ उस पर पड़ा। सभी प्रहरी सजग होकर आक्रमण करने लगे। देखते-ही-देखते क़िले में कोलाहल मच गया। जगह-जगह योधा शस्त्र बाँधने और चिल्लाने लगे। मसालों के प्रकाश में इधर-उधर घूमने लगे।

बारहो व्यक्ति चारों ओर से घिर गए। परंतु वे भीम वेग से फाटक की ओर बढ़ रहे थे। प्रहरी मन में भयभीत थे। तानाजी ने एक बार प्रचंड जय-घोष किया, और उछलकर फाटक पर चढ़ बैठे। बारहो साथियों ने शत्रु-दल को तलवार के बल चीर डाला, और तानाजी ने साहस करके फाटक खोल दिया।

हर-हर महादेव करती हुई महाराष्ट्र-सेना घुस पड़ी। बड़ा भारी घमासान मच गया। रुंड-मुंड डोलने लगे। घोड़ों की चीत्कार, योद्धाओं की ललकार और तलवारों की झनकार ने भयानक दृश्य उपस्थित कर दिया।

तानाजी ने ललकारकर कहा—"किधर है यवन-सेनापति, जो मर्द की भाँति युद्ध करे।"

यवन-सेनापति ने ज़ोर से कहा—"काफ़िर मैं यहाँ हूँ। सामने आ, ग़रीब सिपाहियों को क्यों कटाता है।"

तानाजी उछलकर सेनापति के सम्मुख गए। दोनो में घमासान युद्ध होने लगा। दोनो तलवार-धनी थे। मसालों के धुँधले प्रकाश में दोनो योद्धाओं का असाधारण युद्ध देखने को सेना, स्तब्ध खड़ी हो गई। तानाजी ने कहा—"सेनापति, पहले तुम वार करो, आज मैं तुम्हें मारूँगा।"

"काफ़िर, अभी तेरे टुकड़े किये डालता हूँ।" उसने तलवार का भरपूर वार किया।

"अरे यवन, आज बहुत दिन की साध पूरी होगी।" बदले में तलवार का जनेवा हाथ फेंकते हुए तानाजी ने कहा—"लो।"

सेनापति के मोढ़े पर तलवार लगी, और रक्त की धार बहने लगी। उसने तड़पकर एक हाथ तानाजी की जाँघ में मारा। जाँघ कट गई।

तानाजी ने गिरते-गिरते एक बर्छा सेनापति की छाती में पार कर दिया। दोनो वीर घोड़ों से गिर पड़े।

अब सेना में घमासान मच गया। उदयभानु की राजपूत-सेना और यवन-सेना परास्त हुई। सूर्योदय से पूर्व ही क़िले पर भगवा झंडा फहराने लगा।

लाशों के ढेर से तानाजी का शरीर निकाला गया। अभी तक उसमें प्राण था। थोड़े उपचार से होश में आकर उन्होंने कहा—"क्या क़िला फ़तह हो गया?"

"हाँ महाराज।"

"यवन-सेनापति क्या जीवित हैं?"

यवन-सेनापति भी जीवित था। उसका शरीर भी वहीं था। तानाजी ने क्षीण स्वर में पुकारा—"सेनापति!"

"काफ़िर?"

"पहचानते हो?"

"दुश्मन को पहचानना क्या है? तुम कौन हो।"

"पंद्रह वर्ष प्रथम जिसे आक्रांत करके तुमने उसकी बहन का हरण किया था?"

सेनापति उत्तेजना के मारे खड़ा हो गया। फिर धड़ाम से गिर गया, उसके मुख से निकला—"तानाजी!"

"आज बहन का बदला मिल गया।"

यवन-सेनापति मर रहा था, उसका श्वास ऊर्ध्वगत हो रहा था, और आँखें पथरा रही थीं। उसने टूटते स्वर में कहा—"तुम्हारी हमशीरा और बच्चे इसी किले में हैं, उनकी हिफ़ाज़त........"

यवन-सेनापति मर गया। तानाजी की दशा भी अच्छी नहीं थी, ये शब्द मानो वह सुन नहीं सके। उन्होंने टूटते स्वर में कहा—"महाराज से कहना, तानाजी ने जीवन सफ़ल कर लिया। महाराज बहन की रक्षा करें।"

तानाजी ने अंतिम श्वास समाप्त की!

(१०)

शुभ मुहूर्त में छत्रपति महाराज ने सिंहगढ़ में प्रवेश किया।

प्रांगण में विषण्ण-वदन सैनिक नीची गर्दन किए खड़े थे। घोड़े से उतरते हुए शिवाजी ने कहा—"मेरा मित्र तानाजी कहाँ है ?"

एक अधिकारी ने गंभीर मुद्रा से कहा—"वह वीर वहाँ बरामदे में श्रीमान् की अभ्यर्थना को बैठे हैं।"

अधिकारी रोता हुआ पीछे हट गया। महाराज ने पैदल आगे बढ़कर देखा।

वह निश्चल मूर्ति सैकड़ों घाव छाती और शरीर पर खाकर वीरासन में विराजमान थी। महाराज की आँखों से टपाटप आँसू गिरने लगे। उन्होंने शोक-कंपित स्वर में कहा—"सिंहगढ़ आया, पर सिंह गया।" गढ़ आला पण सिंह गेला

वसंत

(१)

निगमबोध को आज भी दिल्ली का बच्चा-बच्चा जानता है। आज वहाँ मुर्दा-घाट है। अमीर-ग़रीब हिंदू इसी पुण्य स्थान पर महायात्रा करते हैं। दो-चार चिताएँ हमेशा धधकती रहती हैं। इधर कुछ दिनों से कुछ मनचले रईसों ने निगमबोध के इधर-उधर जमना-किनारे पक्के घाट और छोटे-छोटे बगीचे बना लिए हैं, और वहाँ जब वसंत की बयार बहती है, जाड़ा कुछ कम पड़ जाता है, तब बड़ी चहल-पहल रहती है। दिल्ली के छैल जोड़ी और अकेले सुबह-शाम वहाँ जाते, स्नान करते और मौज करते हैं।

परंतु आज से लगभग ८०० बरस पहले निगमबोध की कुछ और ही रंगत थी। उन दिनों दिल्ली पर प्रबल प्रतापी, नौ लाख सवारों के मालिक, चौहान-कुल-कमल-दिवाकर महाराज पृथ्वीराज का राज्य था। आज जहाँ क़ुतुब-मीनार ऊँचा सिर किए मीलों तक फैले खँडहरों पर रंज-भरी नजर डाल रहा है, वहाँ उस समय महानगरी दिल्ली बसी हुई थी, और आज जहाँ दुनियाँ की सात अचरज की चीज़ों में से एक लोहे की लाट

खड़ी है, वहाँ महाराज का सतखंडा महल था, जिसको ड्योढ़ियाँ पर पराजित राजा लोग पहरे दिया करते थे।

(२)

वसंत की बहार थी। निगमबोध पर महाराजा का एक बड़ा भारी बाग़ था। वहाँ तरह-तरह की क्यारियों में तरह-तरह के बेल-बूटे, फूल लहलहा रहे थे। शीतल, मंद, सुगंध हवा के झोंके खा-खाकर डालियाँ लहरा रही थीं। केसर, कुंकुम, जाती, मालती, चमेली, चंपा, जुही, गुलाब, कुंद, कदंब की भीनी सुगंध से कोसों की हवा में मस्ती बिखरी रहती थी। अनार, दाख, पिंडखजूर, लीची, नारियल आदि तरह-तरह के फलों से लदे पेड़ मतवालों की तरह झूम रहे थे।

वसंत-पंचमी का दिन था। महाराज की आज्ञा से उस साल निगमबोध पर वसंतोत्सव मनाने की बड़ी भारी तैयारी की गई थी। ढेरों सामान इकट्ठा किया गया था। मनों अबीर, गुलाल, सेरों केसर, कस्तूरी, चंदन, अगर, कपूर जुटाए गए थे। हरी-भरी डालियों, बंदनवारों और भाँति-भाँति के फूलों से दरबार सजाया गया था। ढोल, डफ, नगाड़े, शंख, वीणा, शहनाई, मोरचंग, झालर, घंटा, विजयघंट आदि बाजे बज रहे थे। बीचोबीच महाराज का हीरों का सिंहासन था। उनके सिर पर कुसूमल पाग थी, जिस पर का पुखराज सूरज की भाँति चमक रहा था। अगल-बग़ल ख़वास मोर्छल झल रहे थे। महाराज के बाईं ओर गोइंदराय, निड्डरराय और सलख

प्रमार थे। दाहनी ओर सोमेश्वर के सगे भाई महासुभट कान्ह थे, जिनकी दृष्टि में शनिश्चर का वास था! वह जिसे क्रोध से देखते भस्म हो जाता था। उनकी आँखों पर असी लाख की कीमत की पट्टी बँधी रहती थी, जो रण-क्षेत्र में और सेजों ही पर खुलती थी। गद्दी के पीछे साक्षात् ब्रह्मा के समान विद्वान् गुरुराम पुरोहित का आसन था, और सामने कवि चंद विराजमान थे, जिन्हें अदृष्टदर्शन और सरस्वती सिद्ध थी। और भी शूर-सामंत दरबार में अपनी-अपनी जगह बैठे थे। राजा और राजदरबारियों की पोशाक बसंती थी। बसंती रंग को छोड़ वहाँ दूसरा रंग न था। अबीर-गुलाल की बौछार हो रही थी। संगीत और नृत्य में चतुर, रूप की खान वैश्याएँ ताल के हिसाब से बंधी हुई लय में, ऊँची-नीची चल-फिर और आड़ी-तिरछी लौट-फेर करती हुई, राग-रागिनियों का समा बाँधकर राजा और दरबारियों का मन चुरा रहीं थीं।

चोबदार ने पुकार की—"पृथ्वीनाथ, कन्नोज से एक ब्राह्मण महाराज को आशीर्वाद देने आया है।"

महाराज ने ब्राह्मण को सम्मुख आने का आदेश दिया। ब्राह्मण ने हाथ में जनेऊ ले राजा को ऊँचे स्वर से आशीर्वाद दिया, और कहा—"हे प्रतापी चौहानराज! आपकी जय हो। मैं क़न्नौज से चला आ रहा हूँ। क़न्नोज-राजकुमारी संयोगिता चौदह वर्ष की हुई। पंगराज उसका स्वयंबर कर रहे हैं; परंतु

मैंने गणना करके देख लिया, वह असाधारण राजनंदिनी आपके लिये उत्पन्न हुई है। वह रंभा का अवतार है। वह अपने गंगा-किनारे वाले महल में, सौ सखियों के साथ, रहती है। महाराज, उस-सी सुन्दरी बाला न जन्मी है, न जन्मेगी। उसके शरीर से हज़ार कामदेव प्रकट हो रहे हैं। जैसे वसंत में पुराने पत्ते झड़कर नई कोपल फूटने से वृक्ष की शोभा होती है, वैसे ही बचपन के जाने और यौवन के आने से उसकी शोभा हो रही है। अजी महाराज, जैसे बरसात में नदी उमड़-उमड़कर समुद्र के हृदय में हलचल मचा देती है, वैसे ही उस बाला का यौवन उसके बालपने को हराकर ऊधम मचा रहा है। अजी, वह तो वसंत की फुलवारी बनी है। जैसे वसंत से दिन में कुछ पकापन आने लगता है, वैसे ही वह भी कुछ निडर-सी हो गई है। उसकी आवाज भौंरे की गूंज को मात करती है। वसंत की वायु के झोंके से झुकी, फूलों से लदी डाल की तरह वह लाज से झुकी-सी रहती है। हे महाराज! इस राजनंदिनी के ब्याह के लिये महाराज जयचंद ने आकाश-पाताल को मंत्र-बल से और बाकी आठ दिशाओं को अपने घुड़सवारों के बल से बाँधने की तैयारी की है। वह बाला सहज मिलने की नहीं। उसके जन्म-काल में मंगल, बुध, शुक्र, शनि और चंद्रमा चौथे स्थान में गोचर में पड़े हैं, गुरु और केतु केंद्र में तथा राहु अष्टम हैं, जन्म से राहु पंचम है। राजन्! इसके विवाह में लोहू की नदी बहेगी, और

हज़ारों छत्रधारियों के मुंड धरती में लोटेंगे। महाराज ! साव-धान होकर तैयारी कीजिए।"

ब्राह्मण चुप हो गया। राजा और राजसभा सन्नाटे में आ गई। पृथ्वीराज ने आपा खो दिया, उन्हें सब ओर संयोगिता-ही-संयोगिता दिखाई देने लगी। उन्होंने विकल होकर कहा—"इस ब्राह्मण को अनगिनत रत्न, धन, हाथी, घोड़े और सोना देकर विदा करो।"

(२)

लगी बुरी होती है। वह लगी ही क्या, जिसमें आँख लगे। फिर वसंत की हवा, जो वियोग की आग को और भी भड़का देती है। पृथ्वीराज का खाना-सोना जाता रहा। उनकी नस-नस में संयोगिता बस गई। आधी रात होने पर भी जब उन्हें नींद नहीं आई, तो उन्होंने चंद कवि को हाज़िर होने का हुक्म दिया। चंद कवि ने आ, हाथ बाँध मुजरा किया।

राजा ने कहा—"मित्र, कहो, कैसे वह सुंदरी हाथ लगेगी ?"

"महाराज, जयचंद का बल अथाह है।"

"यार, यह कहो, कब चलोगे ? बिना संयोगिता को हरण किए मैं एक पल भी नहीं रह सकता।"

"महाराज, सब आगा-पीछा सोच लें।"

"सोच लिया, परसों चल दो, है क्या ? यह ज़िंदगी पानी-भरी खाल है, इसलिये दिल का अरमान निकाल डालना ही अच्छा है।"

"तब महाराज, शूरवीरी को ताक़ में रखकर, भेष बदलकर चलिए। किसी को कानोकान ख़बर न हो। चुने हुए सामंत और शूरमा साथ लीजिए।"

"ऐसा ही सही, तो कूच की तैयारी कर दो।"

"जो आज्ञा।"

* * * *

गहरी अँधेरी रात में ग्यारह सौ सवार चुपचाप दिल्ली से क़न्नौज की राह पर जा रहे थे। इनमें सौ महाबली, अजेय सामंत और एक हज़ार सुभट योधा थे। एक को भी जीते-जी लौटने की आशा न थी। यह छोटी-सी सेना कूच-पर-कूच करती हुई क़न्नौज के सिवानों पर ज्यों ही पहुँची, महाकवि चंद ने कहा—"वीरों! समस्त क्षत्रिय-वंश और छत्रधारियों में श्रेष्ठ, अनगिनत सेना के स्वामी, महाबली, धर्म-धुरंधर, पृथ्वी पर इंद्र के समान, कर्मध्वज-कुल-कमल-दिवाकर क़न्नौज-पति के—जिनके सामने छत्तीसो वंश के क्षत्रिय सिर झुकाते हैं, और दरबार में छहो भाषाएँ, नवो रस, और चौदह विद्या, चौसठकला देह धरकर विराजती हैं—महलों के कलश यही तो हैं।"

सामंतों ने नरनाह कान्ह के पास आकर कहा "महाराज, यह भटवा न जाने कहाँ मरवाएगा। यह जबरदस्त जयचंद का दरबार है, बेदाग़ निकलना आसान नहीं। अब आप पट्टी खोल डालिए, नहीं तो नगरवासी संदेह करेंगे।"

कान्ह ने पट्टी खोल दी, और कहा—"वीरो, अब सोचने का समय नहीं, आगे बढ़ो।"

(४)

अंगार क्या राख में छिपा रह सकता है ? जयचंद की आज्ञा से पृथ्वीराज का कटक दस लाख सेना ने घेर लिया। सब नाके रोक लिए गए। मार-काट, हाय-हाय मच गई। योधा जूझने लगे। रुंड-मुंड कटकर गिरने लगे। घायलों की चिल्लाहट, वीरों की हुँकार से धरती गूँजने लगी। पृथ्वीराज उछलकर घोड़े पर सवार हो बोले—"लो भाई, समय आ गया। अब मालूम हो जायगा, कौन कितने गहरे में है!"

उन्होंने अपार सेना को देखा, कंधे उचकाए, लंगरीराय से हँसकर कहा—"क्षण-भर आप लोहा लें, मैं अभी आया।"

एक छोटा-सा व्यूह बनाया, और चुने हुए सामंतों से गसे हुए, पंग-सेना को चीरते हुए बिजली की भाँति निकल गए। वह काई की तरह शत्रुओं को चीरते हुए निकल गए। गंगा किनारे रत्नमहल में कुमारी मछली की भाँति तड़प रही थी। उसने सब सुना लिया था। वह चौहानराज पर मोहित थी। दासियाँ कह रही थीं—"अरी, तूने ऐसे से मन लगाया, जिसे तेरा पिता तेल में होकर देखता है। उसके लिये तू कहाँ तक कलपेगी, जिस पर हजारों हाथ उठे हैं।" संयोगिता ने दोनों हाथों से मुँह ढाँप लिया। उसने रोकर कहा—"अरी, क्यों

जले पर नमक छिड़कती हो ? मरे को गाली देने से क्या ? कर्म-रेख के सामने विद्या-बुद्धि किसकी चली है ?"

एक धमाके के साथ चहारदीवारी फाँदकर पृथ्वीराज आ गए। सखियाँ सहम गईं। संयोगिता मूर्च्छित हो गई। दो-एक सयानी सखियाँ तत्काल ब्याह की तैयारी में लगीं। उन्होंने कहा—"अंतरिक्ष के देवता साक्षी हैं।" और, उन्होंने पंगराज-बाला और चौहान का हाथ मिला दिया। राजा ने उसे उठाकर बाएँ पार्श्व में बैठाया, और सखियों ने गठजोड़ा करके मंगल-गीत गाने शुरू कर दिए।

बाहर तलवारों की झनझनाहट होने लगी। वीरों की हुंकार महल में आकर मंगल-गीत को ले डूबी। एक सखी ने कहा—"महाराज, शूरों को समर-रूपी मानसरोवर में स्नान करने का सौभाग्य कभी-कभी मिलता है।"

राजा सिंह की भाँति गर्दन ऊँची कर उठ खड़े हुए। उन्होंने कहा—"चलो राजबाला, यह संकोच का अवसर नहीं है।"

संयोगिता ने धरती की ओर देखकर कहा—"आप कैसे मुझे इन थोड़े-से साथियों-सहित ले जायँगे ?"

राजा ने कहा—"हम एक-एक लाख के समान हैं। हम हाथी के दाँत मूली की भाँति उखाड़ते हैं। उठो।"

संयोगिता आँखों में आँसू भरकर बोली—"महाराज! मेरे पिता के यहाँ बीस हज़ार बख्तरिए, सोलह हज़ार निशान, सत्रह

हज़ार हाथी और तीस लाख दुधारे और तेगावर्दार हैं। पैदलों की तो गिनती नहीं। सौ सामंत उन्हें कैसे रोकेंगे ?"

नरनाह कान्ह ने आगे बढ़कर कहा—"जब तक मैं हूँ, बहू, तू निर्भय हो, सुर, नर, नाग, सब मुझसे भय खाते हैं। तू कहे, तो इन्हीं भुजाओं से तेरे पिता के सिंहासन-सहित राजमहल को खोद कर गंगा में फेंक दूँ।"

संयोगिता अछता-पछताकर उठी। पृथ्वीराज ने बायाँ हाथ खींचकर घोड़े के पुट्ठे पर बैठाया, और उछलकर सवार हो लिए। यह देख सामंतों ने उन्हें चारों ओर से गाँस लिया। दाहने काका कान्ह और केहर कंठीर, बाएँ निड्डुरराय, आगे सलख प्रमार, लक्खन बघेरा और जैतराव, पीछे प्रहार राव तँवर, भोहाँ चंदेला, अल्हनकुमार, लक्खन दाहिमा और गक्खर चले।

चंद कवि ने आगे बढ़कर कान में कहा—"पृथ्वीनाथ, आप राजकन्या को लेकर कूच करिए, हम सब सामंत पंग-दल को रोकते हैं।"

पृथ्वीराज ने विषधर नाग की भाँति फुफकारकर कहा—"वाह, मैं चौहान कैसा, जो पंग-दल को मार-मारकर धुर्रे न उड़ा दूँ। जाओ कवि, पुकार कर कह दो कि चौहान पृथ्वीराज पंगराजनंदिनी संयोगिता का हरण कर बीच मैदान खड़ा है। जो माई का लाल हो, आगे आकर रोक ले।"

चंद ने एक ऊँची जगह चढ़कर पुकार की—"जयचंद का

यज्ञ विध्वंस करनेवाले, महाप्रतापी, सँभरीनाथ चौहानपति सुंदरी संयोगिता का पाणिग्रहण कर खड़े हैं, पंग-पुत्री संयोगिता विदाई में युद्ध का कंगन माँगती है।"

सोलह हजार निशानों को उड़ाती पंग-सेना ने चारों ओर से धावा बोल दिया, जैसे प्रबल भूकंप आया हो। संयोगिता ने लाज त्यागकर कहा—"स्वामी! अब मेरा मुँह न देखिए, बढ़-बढ़कर हाथ मारिए, और पल्ले-भर कीर्ति ले क्षत्रिय-जन्म सफल कीजिए।"

पृथ्वीराज ने हँसकर कहा—"पंगकुमारी, संभल बैठो, और जरा रास पकड़े रहो, और चौहान की तलवार के खेल देखो।"

राजा दो तलवारें ले पिल पड़े। नरनाह कान्ह ने दुधारा सँभाला, और बोले—"यार, मरना है, तो ऐसे मरो कि लोग भी जानें।" सारंगराव सोलंकी गुर्ज उठाकर बोला—"बढ़ो नरनाह! अब कटा-कटी चली।" कान्ह दुधारे से कभी हाथी का कपाल चीरता, कभी छाती में सेल मारता, कभी दाँत पकड़ मूली की भाँति उखाड़ता। उनके शरीर से ऐसा खून बहा, जैसे काजल के पहाड़ से गेरू का झरना, खून की नदी बह निकली, और हाथियों की कटी सूँड़ें मगर-सी और ढालें कछुए-सी तैरने लगीं। सारंगराव ने खोपड़ियों के ठठ लगा दिए। इस प्रकार तिल-तिल युद्ध करते, साढ़े इक्यासी मील जमीन पार कर पृथ्वीराज सोरों आ पहुँचे। यहाँ से दिल्ली की हद लगी थी। बासठ सामंत खेत आ चुके थे, और केवल

पैंतालीस आदमी पृथ्वीराज के पास बचे थे। पृथ्वीराज के शरीर पर बयासी और संयोगिता के शरीर पर सत्ताईस घाव थे। वह एक हाथ में कटार और दूसरे में घोड़े की रास पकड़े पति की पीठ की रक्षा कर रही थी। पीछे उमड़ती हुई सेना देखकर पृथ्वीराज ने कहा—"वीरो, अब तो मरने का समय आ गया।" वह घोड़े से उतर पड़े। संयोगिता को घोड़े पर छोड़ा। बारह-बारह सामंत घोड़े के दोनो बगलों में तलवार सूतकर खड़े हो गए। जोगी जंघारा और भीमदेव लौटकर मोर्चा रोकने खड़े हो गए। अब घड़ी-घड़ी की खैर न थी, महारार मची थी।

दशमी की दुपहरी ढल गई। चार घड़ी दिन रहा, तो जयचंद्र हाथी से उतर, घोड़े पर सवार हो खुद पृथ्वीराज को पकड़ने बढ़े। पर जब उनकी निगाह अपनी ओर करुण नेत्रों से ताकती हुई संयोगिता पर पड़ी—जिसके बाल बिखर रहे थे, होठ सूख रहे थे, बदन के घावों का खून सूखकर उन पर धूल जम गई थी—तब वह पकड़ो-पकड़ो! कहते बेहोश होकर धरती पर गिर पड़े। सब सरदार घोड़ों से उतर पड़े। उन्होंने इशारे से युद्ध रोक दिया। वे सब राजा को घेरकर खड़े हो गये। राजा उठे, उनकी आँखों की पुतली पुत्री सामने ताक रही थी, और पृथ्वीराज नंगी तलवार लिए शेष सामंतों सहित उसके घोड़े की रास पकड़े खड़े थे। राजा की आँखों से आँसुओं की धारा बह चली।

उन्होंने तलवार फेंक, पृथ्वीराज की पाँच परिक्रमा करके कहा—"हे कन्नौज के यज्ञ को बिगाड़नेवाले और मेरे प्राण-प्रिय पुत्री को हरनेवाले पृथ्वीराज, दिल्ली का राज्य, अपनी इज्ज़त और आज लाज तुझे देकर मैं कन्नौज जाता हूँ।"

राजा नीचा सिर किए, दूर तक पड़ी लाशों में होकर लौट रहे थे। सूरज छिप रहा था। पृथ्वीराज और उसके तैंतालीस बचे हुए शूरों ने कमर खोली, और उसी जंगल में पड़ाव डाला।

(५)

कवि चंद ने दिल्ली-राजद्वार में आकर पुकार लगाई—"शत्रुओं के दाँत खट्टे कर, महाराज जयचंद का यज्ञ विध्वंस कर संभरीनाथ पृथ्वीराज पंग-राजकुमारी संयोगिता का हरण कर आ रहे हैं।" नगर में हलचल मच गई। तैंतालीस घायल सामंतों की और चवालीसवीं संयोगिता की डोली लिए पृथ्वीराज ने नगर में प्रवेश किया। वही अकेला शूर घोड़े पर था। नगर-नारियों ने अटारी पर बैठकर चावल और खीलें बरसाईं, द्वारों पर कलश और बंदनवार सजाए गए। राजद्वार पर विविध बाजे बजे। चारण और कवि विरदावली बखानते चले। राजा घोड़े से उतरे, तो सोने का कलश लिए, सोलह शृंगार किए, सात सौ सुंदरियों ने मंगल-गान गाकर आरती की। राजदरबारी और नगर-सेठों ने हीरा-मोती, जवाहिर-मुहर राजा पर न्यौछावर किए, और जब राजा ने रंगमहल की

ड्योढ़ियों पर क़दम रक्खा, रानियों ने अपने केशों से उनके पैरों की धूल झाड़ी।

(६)

फिर वसंत आया, पुराने पत्तों को झाड़ता और नई कोपलें खिलाता। राजा का दरबार भरा था। सब कुछ वसंती था—दरबार की बहुत-सी गद्दियाँ सूनी थी, कुछ पर अबोध बालक अपने पिता की तलवार बाँधे बैठे थे। राजा ने एक साँस ली। उस साल नाच-रंग नहीं हुआ। असंख्य धन-रत्न राजा ने लुटाया।

उन दिनों की याद करके निगमबोध की छाती अब भी सुलगती रहती है।

लालारुख़

(१)

उस दिन दिल्ली के बाज़ार में बड़ी धूम थी। चारों तरफ़ चहल-पहल ही नज़र आती थी। घर-घर में जलसे हो रहे थे, और जशन मनाया जा रहा था, बाज़ार सजाए गए थे—ख़ासकर चाँदनी चौक की सजावट आँखों में चकाचौंध उत्पन्न करती थी। असल बात यह थी कि बादशाह आलमगीर की दुलारी छोटी शाहज़ादी लालारुख़ का ब्याह बुख़ारे के शाहज़ादे से होना तय पा गया था। इसके साथ ही यह बात भी तमाम दरबारियों और बुख़ारा के एलचियों से सलाह-मशविरा करके तय पा गई थी, ख़ास तौर से बुख़ारा के शाहज़ादे ने इस बात पर पूरा ज़ोर दिया था कि उसे कश्मीर के दौलतख़ाने में शाहज़ादी का इस्तक़बाल करने की इजाज़त दी जाय, और बादशाह ने इस बात को मंजूर कर लिया था। उस दिन लालारुख़ की सवारी दिल्ली के बाज़ारों में होकर कश्मीर जा रही थी, और दिल्ली शहर की यह सब तैयारियाँ इसी सिलसिले में थीं। जिन सड़कों से सवारी जानेवाली थी, उन पर गुलाब और केवड़े के अर्क़ का छिड़काव किया गया था। दूकानों की सब क़तारें फूलों से सजाई गई थीं।

जगह-जगह पर मौलसरी और बेले के गजरे से बंदनवार बनाए गए थे। बजाजों ने कमबख्वाब और ज़रबफ्त के थानों को लटकाकर खूबसूरत दरवाजे तैयार किए थे, जौहरी और सुनारों ने सोने-चाँदी के जेवरों और जवाहरात के क़ीमती जिंसों से अपनी दूकान के बाहरी हिस्से को सजाया था। इंतिज़ाम के दारोग़ा और बरकंदाज लाल-लाल वरदियाँ पहने और ज़री की पगड़ियाँ डाटे घोड़ों पर और पैदल इंतिज़ाम के लिए दौड़-धूप कर रहे थे। छज्जों और छतों पर लालारुख़ की सवारी देखने के लिए ठठ-की-ठठ औरतें आ जुटी थीं। परदा नशीन बड़े घर की औरतें चिलमनों की आड़ में खड़ी होकर लालारुख़ की सवारी देखने का इंतिज़ार कर रही थीं। नजूमियों और ज्योतिषियों से लालारुख़ की विदाई का महूरत दिखा लिया गया था, और ठीक महूरत पर लालारुख़ की सवारी लालक़िले से रवाना हुई। सबसे आगे शाही सवारों का एक दस्ता हाथ में नंगी तलवारें लिए आगे-आगे चल रहा था। उसके बाद ज़र्क़-बर्क़ पोशाक पहने हाथ में बडे-बड़े भाले लिए, बरकंदाजों का एक झुंड था। इसके बाद तातारी बाँदियाँ तीर-कमान कमर में कसे और नंगी तलवार हाथ में लिए, जड़ाऊ कमर-पेटी में खंजर खोंसे, तीखी निगाहों से चारों तरफ़ देखती हुई, आगे बढ़ रही थीं। इसके बाद झूमते हुए, शाही हाथी थे, जिन पर ज़रदोजी की सुनहरी झूलें पड़ी हुई थीं, और जिनकी सोने की अंबारियाँ

सुनहरी धूप में चमचमा रही थीं। इनमें महीन रेशमी जाली के पर्दे पड़े हुए थे, जिन में शाहज़ादी लालारुख़ की सहेलियाँ उस्तानियाँ, मुग़लानियाँ और रिश्ते की दूसरी शाही औरतें थीं। इनके पीछे नक़ीबों की एक फ़ौज थी, जो चिल्ला-चिल्लाकर हुज़ूर शाहज़ादी की सवारी की आमद लोगों पर ज़ाहिर कर रही थी। इसके बाद ख़ास बाँदियों और महरियों के पैदल झुरमुट में क़ीमती, जड़ाऊ सुखपाल में शाहज़ादी लालारुख़ बैठी थी। एक विश्वासपात्र बाँदी पीछे खड़ी शाहज़ादी पर धीरे-धीरे पंखा झल रही थी। सुखपाल पर गुलाबी रंग के निहायत ख़ूबसूरत, मकड़ी के जाले की तरह महीन पर्दे पड़े हुए थे। इनके पीछे घोड़े पर सवार एक सरदार खोजा फ़िदाहुसेन था, और उसके पीछे मुग़ल-सरदारों का एक मज़बूत दस्ता। इसके बाद रसद, डेरे-तंबू और बल्लियों से लदे हुए बहुत-से ऊंट-ख़च्चर-हाथी तथा बेलदार-मज़दूर चल रहे थे।

(२)

लालारुख़ का सौंदर्य अप्रतिम था, और उसके कोमल तथा भावुक ख़यालातों की ख्याति देश-देशांतरों तक फैल गई थी। देश-देशांतरों के शाहज़ादे उसे एक बार देखने को तरस्ते थे। उसका रंग मोतियों के समान था, उसकी आभा और शरीर की कोमलता केले के नए पत्ते के समान थी। उसके दाँत हीरे कैसे, और आँखें कच्चे दूध के समान उज्ज्वल और निर्दोष थीं। उसका भोलापन और सुकुमारता अप्रतिम थी,

और निर्मम आलमगीर, जो प्रेम की कोमलता से दूर रहा, इस अपनी नन्हीं और भोली बेटी को सचमुच प्यार करता था। उसने अपने हाथों से सहारा देकर उसे सुखपाल में सवार कराया, और आँखों में आँसू भरकर बिदा कराया।

सवारी जब दिल्ली की सीमा पार करके लहलहाते खेतों, जंगलों और पहाड़ियों पर पहुँची, तो लालारुख़ ने अपने नाज़ुक हाथों से पर्दा हटाकर एक नज़र दूर तक फैली हुई हरियाली पर डाली, और जो कुछ भी उसने देखा, उससे बहुत खुश हुई। आज तक उसे जंगल की हरयाली देखने का मौक़ा नहीं मिला था, शाही महल के झरोखों से भी वह झाँक न पाती थी। शाही महल की तड़क-भड़क और बनावट से वह ऊब गई थी, इसलिए जंगल का दृश्य देखकर उसके मन में आनंद होना स्वभाविक था। नए-नए दृश्य उसकी आँखों के आगे आते-जाते थे। रंग-बिरंगे फूलों से लदे हुए वृक्ष और लताएँ, स्वच्छंदता से चौकड़ी भरते हुए हिरनों के झुंड, चहचहाते हुए भाँति-भाँति के पक्षी उसके मन में कौतूहल पैदा कर रहे थे। वह उत्फुल्ल नेत्रों से प्रकृति की शोभा निहारती हुई और भाँति-भाँति के विचारों तथा शंका से उद्विग्न-सी आगे बढ़ रही थी। हर दस कोस पर पड़ाव पड़ता था।

एक दिन—जब सुदूर पश्चिम और उत्तर के आकाश की क्षितिज-रेखा में हिमालय की धवल चोटियाँ प्रातःकाल की

सुनहरी धूप-किरणों से चमककर, देखनेवालों के नेत्रों में चमत्कार पैदाकर रही थीं, और शीतल-मंद-सुगंध वासंती वायु गुदगुदाकर मन को प्रफुल्ल कर रही थी—लालारुख़ अपने खीमे में, रेशम के कोमल गद्दे और तकियों में अलसाई-सी पड़ी हुई, अपने अज्ञात यौवन से बिल्कुल बेख़बर होकर, अपनी सहचरियों से सुरम्य कश्मीर की सुषमा का बखान सुन रही थी। महलसरा के ख़्वोजा दारोग़ा ने सामने आकर कोर्निश की, और अर्ज़ की कि "कश्मीर से बुखारे के नामवर शाहज़ादे ने हुज़ूर शाहज़ादी की ख़िदमत में एक नामी गवैए को भेजा है, और वह ड्योढ़ियों पर हाज़िर होकर क़दमबोसी की इजाज़त से सरफ़राज़ होना चाहता है।"

लालारुख़ का चेहरा शर्म से लाल हो गया। उसने कनखियों से अपनी एक सखी की ओर देखा, और फिर मुस्किराकर वीणा के झंकृत स्वर में कहा—"क्या वह सिर्फ़ गवैया है?"

"नहीं हुज़ूर, वह एक नामी शायर भी है, और उसकी कविता की भी वैसी ही धूम है, जैसी उसके गाने की।"

"क्या वह बुखारे का बाशिंदा है?"

"नहीं हुज़ूर, वह कश्मीर का रहनेवाला है। वह एक कमसिन ख़ूबसूरत और निहायत बाअदब नौजवान है।"

शाहज़ादी ने एक बार दारोग़ा की तरफ़ देखा, और पूछा—"क्या कह सकते हो कि शाहज़ादे के साथ उसके किस प्रकार के ताल्लुक़ात हैं?"

"जी हाँ, तहक़ीक़ात से मालूम हुआ है कि हज़रत शाहज़ादे के साथ इस नौजवान के बिलकुल दोस्ताना ताल्लुक़ात हैं।"

"क्या शाहज़ादे ने कुछ ताक़ीद भी लिख भेजी है?"

"जी हाँ हुजूर, उन्होंने लिखा है कि मैं अपने जिगरी दोस्त इब्राहीम को शाहज़ादी का इस्तक़बाल करने और उन्हें गाने तथा कविता से ख़ुश करने को भेजता हूँ। शाहज़ादी को उनसे पर्दा करने की ज़रूरत नहीं।"

शाहज़ादी नीची नज़र करके मुस्किराई, और धीमे स्वर से कहा—"बहुत ख़ूब। शाहज़ादे के दोस्त का हर तरह आराम से रहने का इंतिज़ाम कर दो।" इतना कहकर वह जल्दी से ख़्वाबगाह में चली गई, और ख़्वाजा सरा कोर्निश करके बाहर आया।

(३)

कहीं बदली छा रही थी। कश्मीर की घाटियों में लालारुख़ की छावनी पड़ी थी। चारों तरफ़ सुहावने दृश्य थे। दूर पर्वत-श्रेणियाँ शोभा बखेर रही थीं। चाँदनी छिटकी थी, और वह बदली में छन-छन कर धरती पर बिखर रही थी। लालारुख़ ने सुना, कोई वीणा के मधुर झंकार के साथ वीणा-विनिंदित स्वर में मस्ताना गीत गा रहा है। उस प्रशांत रात्रि में उस सुमधुर गायन और उसके प्रेम-भावना-पूर्ण शब्दों से लालारुख़ प्रभावित-हो गई। उसने प्रधान दासी को बुलाकर कहा—"कौन गा रहा है?"

"वही कश्मीरी कवि है।"

"बड़ा प्यारा गीत है।"

"और वह गायक उससे भी ज़्यादा प्यारा है।"

"क्या वह बहुत ख़ूबसूरत है?"

"मगर हुज़ूर के तलुओं योग्य भी नहीं।"

लालारुख़ मुस्किराई। उसने कहा—"किसी को भेजकर उसे कहला दो, ज़रा नज़दीक आकर गावे।"

बाँदी "जो हुक्म" कहकर चली गई। और कुछ क्षण बाद ही मूर्तिमती कविता और संगीत की मधुर धार उस भावुक शाहज़ादी के मानस-सरोवर में हिलोरें लेने लगी।

वह सोचने लगी, जिसका कंठ-स्वर इतना सुंदर है, और जिसका भाव इतना मधुर है, वह कितना सुंदर होगा। शाहज़ादी की इच्छा उसे एक बार आँख भरकर देख लेने को हुई। शाहज़ादे ने कहला भेजा था कि उससे पर्दा न किया जाय, परंतु शाहज़ादी इतनी हिम्मत न कर सकी। उसने प्रधान दासी के द्वारा कवि से कहला भेजा कि वह नित्य इसी भाँति शाहज़ादी के लिये गाया करे, तो शाहज़ादी उसका एहसान मानेगी। उस दिन से दिन-भर शाहज़ादी उस अमूर्त संगीत के रूप की कल्पना विविध भाँति करने लगी, और जब वह स्वर्ण-क्षण आता, तो उस स्वर-सुधा में मस्त हो जाती।

कश्मीर धीरे-धीरे निकट आ रहा था। शाहज़ादे से मिलने का दिन निकट आ रहा था। तमाम कश्मीर में शाहज़ादी के स्वागत

की बड़ी भारी तैयारियाँ हो रही हैं, इसकी ख़बर रोज़-रोज़ शाहज़ादी को लग रही थी, पर शाहज़ादी का दिल धड़क रहा था। क्या सचमुच यह अमूर्त संगीत एक दिन विलीन हो जायगा। धीरे-धीरे शाहज़ादी के मन में कवि से साक्षात् करने की इच्छा बलवती होने लगी।

शोभाकार की सुंदर और स्वर्गीय छटा अवलोकन करती हुई लालारुख़ अनमनी-सी बैठी थी। अब वह उस अमूर्त के दर्शन से नेत्रों को धन्य किया चाहती थी। उसने उस स्निग्ध चाँदनी के एकांत में उस कवि को बुला भेजा था। हाथ में वीणा लिए जब उसने घुटने टेक कर शाहज़ादी को अभिवादन किया, तब क्षण-भर के लिए शाहज़ादी स्तंभित रह गई। उसके होठ काँपकर रह गए, बोल न सकी। कवि ने कहा—"हुज़ूर, शाहज़ादी ने ग़ुलाम को रूबरू हाज़िर होने का हुक्म देकर उसे निहाल कर दिया।"

"मैं, मैं तुम्हें बिना देखे न रह सकी।"

"शाहज़ादी का क्या हुक्म है?"

"एक बार इस चाँदनी में मेरे सामने बैठकर वही प्यारा संगीत गा दो।"

"जो हुक्म।"

कवि की उँगलियों ने तारों में कंपन उत्पन्न किया, साथ ही कंठ का मधु भी प्रवाहित हुआ, शाहज़ादी उसमें खो गई। गाना ख़त्म कर, कवि ने साहस करके मुग्धा राजकुमारी का कोमल

कर अपने होठों से लगा लिया। शाहज़ादी चीख़ उठी, उसने अपना हाथ खींच लिया ; पर दूसरे ही क्षण उसने कहा—"ओह ! इब्राहीम, मैं तुम्हारे बिना नहीं जी सकती।" और, वह मूर्च्छित होकर कवि पर झुक गई।

(४)

शालामार बाग़ में शाहज़ादी ने कुछ दिन मुक़ाम करने की इच्छा प्रकट की। कश्मीर से शाहज़ादे के तक़ाजे आ रहे थे कि जल्द सवारी आवे, पर शाहज़ादी शाहज़ादे के पास जाते घबराती थी, वह अपना हृदय कवि को दे चुकी थी। वैसी ही चाँदनी थी, संगमरमर की एक पटिया पर दोनो प्रेमी बैठे थे। फूलों का ढेर और शीराजी सामने रक्खी थी। शाहज़ादी ने कहा—"प्यारे इब्राहीम, इस क़दर मुतफ़िक्र क्यों हो ?"

"शाहज़ादी, हम जो कुछ कर रहे हैं, उसका अंजाम क्या होगा ? शाहज़ादा जब यह भेद जान लेंगे, तो हमारी जान की ख़ैर नहीं। मुझे अपनी ज़रा परवा नहीं, पर आपको उस प्रलय में मैं न देख सकूँगा।"

"ओह ! इब्राहीम, शाहज़ादे बहुत उदार हैं, वह समझते होंगे, मुहब्बत में किसी का ज़ोर-ज़ुल्म नहीं चलता। वह हमें माफ़ कर देंगे।"

"नहीं शाहज़ादी, वह तुम्हें अपनी जान से ज़्यादा चाहते हैं, माफ़ न करेंगे।"

"तो इब्राहीम, मैं खुशी से तुम्हारे साथ मरूँगी। क्या तुम मौत से डरते हो ?"

"नहीं दिलरुबा, और ख़ासकर इस प्यारी मौत से।"

"तो फिर यह राज क्यों पोशीदा रक्खा जाय, शाहज़ादे को लिख दिया जाय।"

"ये तमाम-ठाट-बाट हवा हो जायँगे।"

"उसकी परवाह नहीं, तुम मेरे सामने बैठकर इसी तरह गाया करना, मैं तुम्हारे लिये रोटियाँ पकाया करूँगी।"

"प्यारी शाहज़ादी। बेहतर हो, इस ग़ुलाम को भूल जाओ।"

"ऐसा न कहो, यह कलमा सुनने से दिल धड़क उठता है।"

"तो फिर तुम्हारा क्या हुक्म है ?"

"शाहज़ादे को मैं सब हक़ीक़त लिख भेजूँगी।"

"तुम क्यों, यह काम मैं करूँगा, फिर नतीजा चाहे भी जो हो।"

(५)

"इब्राहीम के गिरफ्तार होने की खबर आग की तरह शाहज़ादी के लश्कर में फैल गई। शाहज़ादी ने सुना, तो पागल हो गई। खाना-पीना छोड़ दिया। सवारी तेजी के साथ आगे बढ़ने लगी। ज्यों-ज्यों कश्मीर नजदीक आता था, सजावट और स्वागत की धूमधाम बढ़ती जाती थी। परंतु शाहज़ादी बद-

हवास थी । शहर में उसका बड़ी धूमधाम से स्वागत हुआ। और, जब महल के फाटक में उसकी सवारी घुसी, तो उस पर हीरे-मोती बखेरे गए । शाहज़ादी ने पक्का इरादा कर लिया था कि ज्यों ही वह शाहज़ादे के सामने पहुँचेगी, उसके कदमों पर गिर कर इब्राहीम की जान बख़्शी की भीख माँगेगी ।

शाहज़ादा जड़ाऊ तख़्त पर बैठा शाहज़ादी के स्वागत करने की प्रतीक्षा कर रहा था। उसके बगल में एक दूसरा जड़ाऊ तख़्त शाहज़ादी के लिये पड़ा था । शाहज़ादी ने ज्यों ही हवादान से पैर निकाला, शाहज़ादा उसे देखकर अवाक् रह गया—बिखरे बाल, मलिन वेश, सूखा और पीला चेहरा और सूजी हुई आँखें। शाहज़ादी ने आँख उठाकर शाहज़ादे को नहीं देखा, वह आगे बढ़कर तख़्त के नीचे जमीन पर लोट गई। उसने शाहज़ादे के पैर पकड़ कर कहा—"क्षमा, क्षमा, ओ उदार शाहज़ादे ! क्षमा ।"

शाहज़ादे ने कहा—"उठो शाहज़ादी, तुम्हारे लिये सब-कुछ किया जा सकता है, यह तुम्हारा तख़्त है, इस पर बैठो ।" शाहज़ादी ने डरते-डरते आँखें उठाकर शाहज़ादे की ओर देखा। "या खुदा" इतना ही उसके मुंह से निकला, और वह शाहज़ादे की गोद में बेहोश होकर लुढ़क गई ।

(६)

"हाँ, तो तुम इब्राहीम की जाँ-बख़्शी चाहती हो प्यारी ।"

"हाँ प्यारे, तुम इब्राहीम को जानते हो ?"

"कुछ-कुछ ।"

दोनों ठहाका मारकर हँस पड़े। लालारुख़ ने शाहज़ादे की गोद में मुँह छिपा लिया।

दे खुदा की राह पर !

(१)

मैं उसे बहुत दिनों से उसी स्थान पर बैठा देखा करता था। वह जामे-मस्जिद की सीढ़ियों के नीचे, एक कोने में, बैठा रहता था। उसके हाथ में एक पुरानी ऊनी टोपी थी, उसी को वह भिक्षा-पात्र की भाँति काम में लाता था। उसकी अवस्था सत्तर को पार कर गई थी, फिर भी वह खूब मज़बूत दिखाई पड़ता था। उसका कंठ स्वर सतेज और गंभीर था। उसके चेहरे पर एकाध चेचक के दाग़ थे। उसके मुँह से निकले हुए शब्द "दे खुदा की राह पर!" ही सदा सुन पड़ते थे, दूसरे शब्द बोलना वह जानता था या नहीं, कह नहीं सकते। उससे कभी कोई बात नहीं करता था। बातें करने पर वह कभी जवाब भी नहीं देता था। लोग उसे बहुधा पैसे दे देते थे। पैसा टोपी में डालने पर उसने कभी किसी को आशीर्वाद नहीं दिया। परन्तु उसके चेहरे के भाव, जो निरंतर अमिट रूप से बने रहते थे, देखकर अनायास ही मनुष्य की उस पर श्रद्धा हो जाती थी। संभव है, वह मन-ही-मन आशीर्वाद देता हो। बहुधा मैंने देखा था, लोग चुपके से उसके निकट जाते, पैसा उसकी टोपी में फेंकते और धीरे से खिसक जाते थे।

वह तो अपनी अनवरत गति से "दे खुदा की राह पर!" की आवाज़ थोड़ी-थोड़ी देर बाद लगाता रहता था। घर से दफ़्तर जाने का मेरा रास्ता जामे-मस्जिद होकर ही था। जामे-मस्जिद से मैं ट्राम पकड़ता था। ट्राम की प्रतीक्षा में कभी-कभी मुझे कुछ देर अटकना पड़ता था। वह सीढ़ियों के जिस नुक्कड़ पर बैठता था, वहाँ मैं ट्राम की प्रतीक्षा में खड़ा रहता था। उस समय ट्राम आने तक मैं उसके एकरस और एक-सी भाव-भंगी से परिपूर्ण चेहरे को, आते-जाते तथा पैसा देनेवालों को और उनकी पोशाक-भावना को ध्यान से देखता रहता था। मुझे इसका कुछ चाव-सा हो गया था।

मैंने उसे कभी कुछ नहीं दिया। एक पैसा देते हुए मुझे शर्म लगती थी। अधिक देते भी शर्म लगती थी। सभी तो पैसा देते थे, मेरा अधिक देना दंभ में सम्मिलित था। फिर मेरी आमदनी भी इतनी संक्षिप्त थी कि मैं अधिक दे नहीं सकता था। और, यह तो रोज का धंधा ठहरा।

(२)

वर्षा के दिन थे। दिन-भर पानी बरसा था। दफ़्तर जाती बार देखा, वह एक कोने में खड़ा भीग रहा है। उस दिन उसे इस प्रकार निरीह भीगता देखकर मन पर आघात लगा। जी में ऐसा हुआ कि इसके लिये कुछ तो करना ही चाहिए। दफ़्तर से जब मैं लौटा, तब वह अपने स्थान पर बैठा था। बदली खुल गई थी। उस दिन मुझे दफ़्तर से लौटते देर हो

गई थी । अंधेरा होने लगा था। मैं क्षण-भर रुककर उसकी ओर देखने लगा । वह अपने स्थान से उठा। उसने धीरे से, मानो वह आत्मनिवेदन कर रहा हो, कहा—"या खुदा ! आज तो कुछ भी नहीं !"

उसने गंभीरता से अपनी दाढ़ी हिलाई और अपनी लाठी टेकता हुआ चल दिया। मैं भी मन्त्र-मुग्ध की भाँति उसके पीछे हो लिया । मुझे उसके प्रति कौतूहल हो रहा था, क्योंकि उन सुपरिचित शब्दों के सिवा प्रथम बार ही मैंने उसके मुँह से निकलते ये शब्द सुने थे ।

(३)

वह पतली और सँकरी गलियों को पार करता हुआ धीरे-धीरे, उसी लाठी की आँखों से राह टटोलता हुआ, चला जा रहा था । पीछे-पीछे मैं था । बस्ती का शानदार भाग पीछे छूट गया था । अब वह गरीबों के टूटे-फूटे घरों के पास गुज़र रहा था । अंत में एक खंडहर के समान घर के द्वार पर वह खड़ा हो गया । उसने कुंडी खटखटाई, और एक किशोरी बालिका ने आकर द्वार खोल दिया । यद्यपि मैं कुछ दूर था, फिर भी मैंने उस सुकोमल मूर्ति को देख लिया । उसे देखकर आँखें हरी हो गईं । उन आँखों ने भी, मालूम होता है, मुझे देख लिया । यद्यपि उन के दूध समान स्वच्छ आँखों की दृष्टि पड़ते ही मेरी आँखें नीचे को झुक गई थी, फिर भी जैसे मेरा मूक निवेदन वहाँ तक पहुँच चुका था !

वृद्ध को इस बात का कोई ज्ञान न था कि मैं उसका पीछा कर रहा हूँ। वे दोनों भीतर चले गए। दरवाजा बंद होगया। मैं फिर भी खड़ा कुछ सोचता ही रहा। यह अंधा, बूढ़ा भिखारी कौन है, और इसके साथ यह अनिंद्य सुन्दरी बाल कौन है?

मेरी दृष्टि बंद द्वार पर थी। द्वार खुला, वे ही आँखें एक बार दोलायमान होकर मेरे मुख पर अटक गईं। मैं चमत्कृत होकर देखने लगा। उसने संकेत से मुझे निकट बुलाया, और कहा—"आप बाबा से कुछ कहा चाहते हैं?"

मैंने बिना सोचे ही जवाब दिया—"हाँ, मैं उनसे कुछ बात किया चाहता हूँ।"

"आप आइए।"

वह पीछे हट गई। मैं भीतर चला गया। मेरे भीतर आने पर उसने द्वार बंद कर लिया। भीतर से घर काफ़ी बड़ा था। मकानियत तो कुछ न थी, मैदान काफ़ी था। उसमें एक नीम का पेड़ भी था। घर हर तरह साफ़ था। वृद्ध फ़कीर एक चटाई पर चुपचाप बैठा था।

बालिका ने कहा—"बाबा, यह आए हैं।"

बूढ़े ने दोनों हाथ फैला-कर कहा—"आइए मेरे मेहरबान, मुझसे रज़िया ने कहा कि आप मेरे पीछे-पीछे आ रहे थे, और दरवाज़े पर खड़े थे। कहिए, मैं आपकी क्या ख़िदमत बजा ला सकता हूँ? बैठिए।"

बालिका ने एक चटाई का टुकड़ा लाकर डाल दिया था। मैं उसी पर बैठ गया। मैंने कहा—"मैंने इस तरह आकर आपको जो तकलीफ़ दी, उसके लिये माफ़ी चाहता हूँ। दर-असल मेरा कोई काम नहीं है। मगर मैं आपको अर्से से जामे-मस्जिद पर देखता हूं। मैंने आपको कभी कुछ नहीं दिया। लेकिन आज उठती बार आपके मुँह से यह सुनकर कि 'आज कुछ भी नहीं, मैं अपने को क़ाबू में न रख सका। एक पैसा आप-जैसे संजीदा बुज़ुर्ग के हाथ में रखते शर्म आती थी। ज्यादा की औक़ात नहीं। पर आज तो इरादा ही कर लिया, मगर हिम्मत न हुई कि आपको आवाज़ दूँ। यही सोचते-सोचते यहाँ तक चला आया।"

बूढ़े ने संतोष से सारी बातें सुनी। फिर उसने आकाश की ओर अपने दृष्टि-विहीन नेत्र फैलाकर कहा—"शुक्र है अल्लाह का! दुनिया में आप-जैसे भी फ़रिश्ता-खसलत इंसान हैं। खुदा आपको बरकत दे। आप शायद हिंदू हैं?"

"जी हाँ।" मैंने धीरे से कहा, और एक रुपया निकालकर बूढ़े के हाथ पर रख दिया।

रुपया हाथ से छूकर बूढ़े ने कहा—"खुदा आपको खुश रक्खे, मगर मैं अपने घर पर भीख नहीं लेता, खुदा के घर के क़दमों पर बैठकर ही मैं भीख लेने की जुर्रत कर सकता हूं, वह भी खुदा की राह पर। यहाँ तो मेरा फ़र्ज़ है कि मैं आपकी, जहाँ तक हो, मिहमान नमाज़ी करूँ।"

यह कह बूढ़े ने रुपया वापस मेरी तरफ़ सरका दिया। इसके बाद रज़िया को पुकार कर कहा—"बेटी, इन मिहरबान की कुछ तवाज़ा तो जरूर करनी चाहिए। यह हिंदू हैं, और कुछ तो न खायँगे, इलायची घर में हों, तो जरा ला दो बेटी !"

रज़िया दो इलायची ले आई। वह घुटनों के बल मेरे सामने बैठ गई। उसने अपनी सुनहरी हथेली मेरे सामने फैला दी। उस पर दो ईलायचियाँ धरी थीं। उसने मुस्किराकर कहा—"इलायचियाँ लीजिए। घर में तश्तरी नहीं है।"

"घर में तश्तरी नहीं है" ये शब्द उसने कंपित कंठ से कहे। बूढ़े की आँखों में आँसू भर आए। उसने कहा—"तश्तरी नहीं है, तो उसका रंज क्यों, बेटी !"

उसने फिर आँसू पोंछकर कहा—"मिहरबानमन, बिटिया की नजर क़बूल कीजिए, जिससे मेरी और मेरे खानदान की इज्जत बढ़े।"

मैंने इलायचियाँ ले लीं। मैं इस फेर में पड़ा, क्या सचमुच बूढ़े का कोई ख़ानदान भी है !

रुपया देने के कारण मैं लज्जित हो रहा था। मैंने कहा—"मिहरबानी करके आप अपने कुछ हालात बतावेंगे, और कोई ऐसा काम भी, जिसे करके मैं आपकी कुछ ख़िदमत बजा लाऊँ ?"

बूढ़े ने कहा—"पिछले नौ वर्षों से—यह मैं आपसे आज

बातें कर रहा हूँ, रज़िया और मैं इतने दिनों से यहाँ अकेले रहते हैं—हम लोग न किसी से मिलते, न कोई हमसे मिलता है । आपने आज अचानक आकर इस बूढ़े, अंधे, अपाहिज पर इतनी मिहरबानी की ।" उसने झुककर मेरे दोनों हाथ चूम लिए।

रज़िया ने आकर कहा—"बाबा ! आज खाने का क्या होगा ?"

बूढ़े ने दो पैसे टेंट से निकालकर कहा—"सिर्फ़ ये ही हैं ! एक पैसा तुम हस्ब मामूल दरगाह पर ख़ैरात दे आओ, और एक पैसे के चने ले आओ । आज उन्हीं पर औक़ात-बसर होगी ।"

रज़िया चली गई । मैं बूढ़े के दृष्टि-हीन, तेजवान् मुँह को देखता रहा । फिर मैंने कहा—"रज़िया क्या आपकी बेटी है ?"

"नहीं, पोती है । इसकी माँ इसे जन्मते ही मर गई थी । इसे मैंने इन्हीं हाथों से पाला, है ।"

"रज़िया के वालिद शायद नहीं हैं ?"

"नहीं ।" बूढ़े का गला भरा गया । फिर उसने ज़रा खाँस-कर कहा—"उसे मरे आज चौदह साल हो गए ।" बूढ़े की दृष्टि-हीन आँखें मानो कुछ देखने लगीं । उनमें पानी छलछला आया । उसने एक बार आकाश की ओर उन आँखों को उठाया, और फिर ज़मीन पर झुका दिया ।

मुझे ऐसा मालूम हुआ कि बूढ़े का जीवन गंभीर भेदों से

परिपूर्ण है। परन्तु मुझे उससे कुछ पूछने का साहस नहीं हुआ। मैंने फिर कहा—"क्या मैं आपकी कोई ख़िदमत बजा ला सकता हूँ ?"

"मेरी कोई ख़िदमत ही नहीं है, मिहरबान! मैं ख़ुदा का एक अदना ख़िदमतगार हूँ।" उसके होठ काँपकर रह गए, मानो बल-पूर्वक कुछ उसके मुख से निकल रहा था, वह उसने ज़बरदस्ती रोक लिया।

रज़िया लौट आई। और, उसने भुने हुए चने बूढ़े के सामने, एक साफ़ कपड़े के टुकड़े पर, फैला दिए। बूढ़े ने पानी मँगाकर वज़ू किया, नमाज़ पढ़ी, और फिर मेरे पास आकर कहा—"अगर एक मुट्ठी इसमें से आप क़बूल फ़र्माएं, तो मैं समझूँ कि अब भी मैं मिहमाननमाज़ी करने के लायक़ हूँ।" उसने चनों का रूमाल आगे बढ़ाया।

मैंने थोड़े चने मुट्ठी में लेकर कहा—"मेरे बुज़ुर्ग, इन्हें मैं नियामत समझता हूँ।"

रज़िया पास आ बैठी। हम तीनों ने चने खाए। इसके बाद मैं उठ खड़ा हुआ। बूढ़े ने खड़े होकर मुझे विदा किया। मेरा नाम पूछा, और दुआ दी।

(४)

मैं रोज़ उसे वहीं भीख माँगते देखता, पर कभी कुछ देने तथा बोलने का साहस न करता। हाँ, बीच-बीच में मैं उसके घर, घंटा-दो-घंटा जाकर बैठ आता था। उसका असली

परिचय प्राप्त करने की मैंने बहुत चेष्टा की, पर न प्राप्त कर सका। अलबत्ता मुझे यह अवश्य मालूम हो गया कि बूढ़ा कोई बहुत ही बड़े खानदान का आदमी है। चार साल गुज़र गए। हम लोगों में बहुत घनिष्ठता बढ़ गई थी। बूढ़े का यह नियम था कि वह तमाम भीख में से आधी मज़ार पर ख़ैरात कर देता था। यह मज़ार उसी की धर्मपत्नी का था, जिसे उसने कभी अपने प्राणों से भी ज्यादा प्यार किया था, और अब पूजा करता था। आधी भीख वह अपने और रज़िया के काम में लाता था।

एकाएक मैंने देखा, वह अब सीढ़ियों पर नहीं है। कई दिन बीत गए, आख़िर मैं एक दिन उस के घर गया। देखा, बूढ़ा मृत्यु-शय्या पर पड़ा है, रज़िया अकेली उसकी सेवा कर रही है। रज़िया अब सत्तरह साल की अप्रतिम सुंदरी थी। परन्तु उसके सौन्दर्य में चमेली के समान माधुर्य था—वह पवित्रता, गौरव और गंभीरता के केन्द्र-स्वरूप थी। उसके गुणों पर मैं मोहित था, और मेरे मन में उसके प्रति आदर था। और मेरी आयु यद्यपि तीस वर्ष के लगभग ही थी, और मेरी पत्नी का जीवन के आरम्भ ही में देहान्त हो गया था, फिर भी उसके प्रति प्रेम की भावना से देखने का मैं साहस न कर सका था। वह मुझे 'बड़े भाई' कहकर पुकारती थी।

मुझे देखते ही उसने मुझसे कहा—"बड़े भाई, देखो, बाबा की क्या हालत हो गई है! कई दिन से तुम्हें याद कर

रहे हैं, पर मैं इन्हें छोड़ अकेली इतनी दूर तुम्हारे घर नहीं जा सकती थी।"

बूढ़े को होश हुआ, तो रज़िया ने उसके पास जाकर कहा—"बाबा! बड़े भाई आए हैं।"

बूढ़े ने मेरी तरफ़ मुख किया, मैंने समझ लिया, अब चिराग़ बुझने में विलंब नहीं। मैंने उसका हाथ अपने हाथ में लेकर कहा—"ओफ़्! आप इतने कमज़ोर होगए! मुझे ख़बर भी नहीं मिली! आज तो आप मेरे मन की साध मिटा दीजिए, मुझे कुछ ख़िदमत करने का हुक्म दीजिए।"

बूढ़े ने कंपित स्वर में कहा—"अच्छा, तुम मेरी ओर से रज़िया का एक काम कर दोगे?" "बहुत ख़ुशी से।" मैंने उत्सुकता से कहा। बूढ़े ने मंद स्वर से रज़िया को कुछ संकेत किया। वह कोठरी के एक कोने से कपड़े में लपेटा एक पुलिंदा ले आई। बूढ़े ने उसे अपने हाथ में ले, छाती से लगा, फिर मेरी तरफ़ बढ़ाते हुए कहा—"इन काग़ज़ों को सम्भाल कर रखना, जान से भी ज़्यादा, और जब रज़िया अठारह साल पार कर जाय, तब खोलना। इसमें जैसा लिखा है, वैसा ही करना। ज़बान दो, करोगे?"

मैंने ज़बान दी। बूढ़े ने फिर कहा—"मेरे बाद रज़िया यहाँ न रह सकेगी। उसे तुम जहाँ मुनासिब समझो, रखना, परन्तु अपनी हिफ़ाज़त से दूर नहीं। मगर यहाँ से निकलकर और मेरे बाद वह फ़क़ीरी हालत में न रह सकेगी।" बूढ़े ने एक

जड़ाऊ कंगन निकालकर दिया, और कहा—"इसे बेचकर मेरी रज़िया को आराम से रहने का बंदोबस्त कर देना।"

बूढ़ा कुछ देर चुप रहा। वह अपने हृदय में उबलते हुए तूफ़ान को शांत कर रहा था। कुछ ठहर कर उसने मुझे और रज़िया को पास बुलाकर, दोनों के हाथ पकड़, अपनी छाती पर रखकर कहा—"मेरे मिहरबान, तुम हिंदू हो और रज़िया मुसलमान, मगर ख़ुदा की नज़र में दोनों इंसान हैं। मैं उम्मीद करता हूँ, तुम रज़िया के लिये कभी बेफ़िक्र न होंगे।"

कुछ ठहरकर कहा—"मेरे बच्चो, तुम लोग अपना नफ़ा-नुक़सान सोच लेना।"

हम दोनों सिर झुकाए बूढ़े की टूटी चारपाई के पास बैठे रहे। कुछ देर बाद बूढ़े ने कहा—"बड़े भाई, अब तुम रज़िया को लेकर चले जाओ। मेरा वक़्त नज़दीक है, मेरी मिट्टी सरकार के आदमी सँगवा देंगे।" वह जोश में हाँफने लगा।

हम लोगों ने उसकी कुछ न सुनी। हम वहीं डटे रहे। तीन दिन बाद उसकी मृत्यु हुई।

रज़िया मेरे घर रहने लगी। मेरी बूढ़ी मौसी देहात में रहती थी। उसे मैंने बुलाकर घर में रख लिया था। सुविधा के ख़्याल से मैंने रज़िया का नाम कमला रख लिया था। मैंने वह कंगन बेचा नहीं। उसका मूल्य बीस हज़ार से भी अधिक कूता गया था। रज़िया ने कहा—"इस कंगन से दादा बातें

किया करते थे। यह दादी का कंगन था।" मैंने भी उसे एक पूजनीय वस्तु समझा।

(५)

रज़िया का अठारहवाँ साल ख़त्म हो गया। मैंने उस दिन रज़िया को नई साड़ी पहनाई। फूलों का हार पहनाया। उसके बाद मैंने वह पुलिंदा खोला। उसमें कुछ काग़ज़ात थे, एक शाही मुहर थी, कुछ फ़र्मान थे, और एक विवरण-पत्र था। उसे पढ़ने पर पता लगा, बूढ़ा सुलतान टीपू का बेटा खिज़रखाँ था! उसका बेटा रज़िया का पिता युद्ध में मारा गया था। सरकार के साथ कुछ ऐसी संधियाँ थीं कि रज़िया को अठारह वर्ष की होने पर सरकार से उसे एक इलाक़ा, जो उसके बाप का जब्त कर लिया गया था, मिलता। रज़िया के जन्म और वंश का प्रमाण रज़िया के गले के तावीज़ में था। तावीज़ खोल डाला गया।

समय पर सब काग़ज़ात हाईकोर्ट में दाखिल कर दिए गए। छः मास बाद रज़िया को जागीर मिल गई। इसकी आमदनी पाँच लाख रुपया सालाना थी।

जागीर मिलने पर रज़िया को लेकर मैं इलाक़े पर चला गया। वहाँ पर दख़ल वग़ैरा लेकर, सब व्यवस्था करके जब मैं चलने लगा, तो रज़िया ने आँखों में आँसू भर कर, मेरा हाथ पकड़कर कहा—"अब जाओगे कहाँ ?"

मैंने कहा—"रज़िया रानी, अब 'बड़े भाई' न कहोगी ?"

"नहीं।" रजिया की आँखों में आँसू और होठों में हँसी थी। वह लिपट गई।

मैंने कहा—"रजिया ! 'बड़े भाई' का कुछ लिहाज करो। दर्द सिर्फ तुम्हारे ही दिल में नहीं, दूसरी जगह भी है, पर जो हो गया, सो हो गया।"

रजिया ने बहुत समझाया, पर मैं न माना। मैंने कहा—"एक बार 'बड़े भाई' कह दो, तो जाऊँ।"

रजिया रोते-रोते धरती पर लोट गई। उसने कहा—'बड़े भाई, फिर यहीं रहो, जाते कहाँ हो ?"

"बहन के घर कैसे रहूँ ?"

रजिया ने आँसू पोंछकर कहा—"तब जाओ—"बड़े भाई !"

मैं घर चला आया। वही मेरी नौकरी थी। मेरे रोम-रोम में रजिया थी, और रजिया के रोम-रोम में 'बड़े भाई'।

*   *   *

आज तीस साल इस घटना को हो गए हैं। रजिया की आयु पचास वर्ष की हो गई है, मैं तिरसठ को पार कर चुका हूँ। हम दोनों ने ब्याह नहीं किया। मैं साल में एक बार रजिया के घर जाता हूँ। उसकी सब आमदनी सार्वजनिक कामों में जाती है। सरकार से उसे बेगम की उपाधि मिली है।

मेरी नौकरी अभी चल रही है। बूढ़े शाहजादे का यह चित्र मैं सदैव अपने सामने रखता हूँ।

नूरजहां का कौशल

(१)

सन् १६२५ का अंत हो रहा था। दिल्ली के तख्त पर मुग़ल सम्राट् जहाँगीर बैठकर निश्शंक सुरा, संगीत और सुंदरी-सेवन में जीवन का मध्य भाग सार्थक कर रहे थे, और रूप, गर्व और प्रतिहिंसा की देदीप्यमान मूर्ति, ईरान के एक साधारण सावंत आयश की कन्या, बादशाह के मन्त्री आसफ़ की बहन तथा शेर अफ़ग़ान की विधवा महरुन्निसा मलिका नूरजहाँ के नाम से उदय होकर उस इन्द्रिय-परायण मुग़ल-सम्राट् और अमूल्य रत्नों से परिपूर्ण मुग़ल-तख्त को अपने स्वेच्छाचारी पदाघात से हिला रही थी।

छोटे और बड़े अमीर-उमरा से लेकर साधारण प्रजा-जन तक यह जान गए थे कि दिल्ली के तख्त पर जो दुबला-पतला, रसीली आँखों वाला व्यक्ति सम्राट् के नाम से बैठा दीखता है, यह एक सूखी लकड़ी है, जो रूप की धधकती हुई ज्वाला से तख्त-सहित धीरे-धीरे जल रही है।

नूरजहाँ में रूप था, दर्प था, प्रतिहिंसा थी, क्रोध था और थी स्त्री-हृदय की दुर्बलता तथा स्त्री-मस्तिष्क का कौशल, साहस और प्रत्युत्पन्न मति की अपूर्व प्रतिभा।

और जहाँगीर में क्या था ? असाधारण बड़प्पन, उदारता, प्रेम और सुकुमारता। निन्संदेह वह बादशाह के पद के योग्य न था। बादशाह होने के लिये जो कठोरता, रूक्षता, कौशल और दूरदर्शिता मनुष्य में होनी चाहिए, जहाँगीर में न थी। वह एक प्रेम का मतवाला रईस था। वह जिस स्त्री के रूप में अपने यौवन के उदय-काल में डूबा, उसके स्वाद का प्रलोभन वह दस वर्ष व्यतीत होने पर भी, उस रूप के झूठे और किर-किरे होने पर भी, उसमें ज़हर मिल जाने पर भी, संवरण न कर सका। उसके लिये उसने लोक-लाज, न्याय, अपना पद-गौरव, साम्राज्य सभी कुछ संसार की दया पर छोड़ दिया। रूप का ऐसा दयनीय भिखारी शायद ही पृथ्वी पर उत्पन्न हुआ हो।

(२)

आगरे के क़िले में, एक छोटे किंतु सजे हुए कक्ष में कार-चोबी काम के चँदोवे के नीचे, मसनद पर, सम्राट् जहाँगीर बैठे ऊँघ रहे थे। ज्वलंत रूप-शिखा नूरजहाँ, उनसे तनिक हटकर दाहनी ओर बैठी, संगमरमर की प्रतिमा प्रतीत होती थी। सेनापति महावतखाँ और महामंत्री आसफ़उद्दौला सामने अदब से खड़े थे। उनके आगे शाहज़ादा खुर्रम नीचा सर किए खड़े थे। प्रातःकाल का समय था, और वह छोटा-सा दरबार सन्नाटे में डूबा हुआ था। बादशाह ने अचानक आँख उठाकर कहा—"महावतखाँ, हमारे बहादुर सिपहसालार, हम

तुमसे बहुत खुश हैं, तुमने तख़्त की भारी खिदमत की है, जो शाहज़ादे को दरगाह में ले आए हो। और शाहज़ादा, तुम्हारे सब क़सूर माफ़ किए जाते हैं, और हम दारुल सल्तनत में तुम्हारा इस्तक़बाल करते हैं।"

शाहज़ादा खुर्रम और सेनापति महावतख़ाँ ने अदब से सिर झुकाया। इसके बाद शाहज़ादा घुटने झुकाकर तख़्त को चूमने को ज़रा आगे बढ़े।

नूरजहाँ ने एक तीव्र दृष्टि से दोनों व्यक्तियों को घूरकर कहा—"मगर ठहरो, तुम गुनाहगार हो, पहले तुम्हारी कैफ़ियत ली जायगी।"

शाहज़ादे ने दृढ़ स्वर में कहा—"मेरी क़ैफ़ियत ?"

"हाँ, तुम्हारी कैफ़ियत।"

"किस मामले की ?"

"तुमने शाहज़ादे खुशरू का क़त्ल कराया है, और अपने वालिद और दीनोदुनियां के बादशाह के खिलाफ़ साजिश की है। बग़ावत करके हथियार उठाए हैं।"

"मैंने कैफ़ियत जहाँपनाह की खिदमत में लिख भेजी थी, अब उसके दुहराने की जरूरत नहीं !"

"ज़रूरत है !" नूरजहाँ ने दर्प से कहा।

शाहज़ादे ने बादशाह की ओर ताककर कहा—"जहाँपनाह !"

बादशाह ने नीची नज़र करके कहा—"शाहज़ादा खुर्रम, तुमने जो कैफ़ियत लिख भेजी थी, उसे यहाँ दुहरा दो।"

क्षण-भर शाहज़ादा नीचा सिर किए सोचते रहे, फिर उन्होंने बादशाह को लक्ष्य करके कहा—"जहाँपनाह, कैफ़ियत मुझे किसके सामने देनी होगी, शाहंशाहहिंद जहाँगीर के सामने या कि शेर अफ़ग़ान की विधवा के सामने ?"

नूरजहाँ ने ग़ुस्से से होठ काटकर कहा—"तुम्हें यह न भूलना चाहिए कि तुम मुजरिम और शाही गुनहगार हो।"

शाहज़ादे ने उस पर ध्यान न देकर बादशाह से कहा—"क्या जहाँपनाह सचमुच मुझसे कैफ़ियत चाहते हैं ?"

"हाँ, चाहता हूँ।"

"तब मेरा क़ुसूर माफ़ करने के बहाने यहाँ बुलाकर क़ैद करना ही आपका मक़सद था ?"

नूरजहाँ ने त्योरियों में बल डालकर कहा—"तुम किससे बातें कर रहे हो। शाहज़ादे !"

"अपने पिता से।"

"मगर तख़्ते-मुग़लिया की हुकूमत मेरे हाथ में है। मैं तुम्हें एक साल की क़ैद का हुक्म देती हूँ। महावतख़ाँ, शाहज़ादे को गिरफ़्तार करो।"

महावतख़ाँ अब तक चुपचाप खड़े थे। अब उन्होंने दृढ़ स्वर में कहा—"माफ़ कीजिएगा मलिका साहबा, मैं शाहज़ादे को यह ज़बान देकर लाया हूँ कि आप के सब क़ुसूर माफ़ किए जायँगे। ऐसी हालत में शाहज़ादे को गिरफ़्तार करना धोकेबाज़ी है, जिसमें बंदा शरीक होने से इंकार करता है।"

नूरजहाँ ने क्रोध से काँपते हुए कहा—"इंसाफ़ करना और हुक्म देना मेरा काम है, तुम्हारा काम हुक्म मानना है। तुम नौकर हो।"

"मलिका साहिबा, महावतखाँ इस हुक्म को मानने से इंकार करता है।"

नूरजहाँ ने तख़्त से उठते हुए कहा—"तुम्हारी इतनी मजाल! कोई है, महावतखाँ को गिरफ़्तार कर लो।"

महावतख़ाँ ने स्थिर-गंभीर स्वर से कहा—"मलिका साहिबा, बीस साल से मैं इन सिपाहियों का सिपहसालार हूँ। इनको मैं अगणित बार युद्ध के मैदान में ले गया हूँ, और फ़तह का सेहरा सिर पर बाँधकर ले आया हूँ। कितनी बार इन्होंने जानें देकर मेरी हिफ़ाजत की है, अब इनकी इतनी जुर्रत नहीं हो सकती कि मुझे गिरफ़्तार करें। हाँ, बादशाह सलामत, आपके सामने यह सिर और हाथ हाज़िर हैं बाँधिए या क़त्ल कीजिए।

यह कहकर महावतख़ाँ ने बादशाह के सामने हाथ बढ़ा दिए।

बादशाह ने कहा—"महावतखाँ, तुम्हारे बाँधने की जंजीर अभी तैयार नहीं हुई। जाओ हम तुम्हें माफ़ करते हैं। और शाहजादा, तुम्हें भी हम माफ़ी बख़्शते हैं, जाओ।"

यह कहकर बादशाह उठ खड़े हुए। नूरजहाँ पैर से कुचली हुई नागिन की भाँति फुंफकारती रह गई।

(३)

"मैं महावत से जरूर कैफ़ियत तलब करूँगी।"

"नूरजहाँ, वह कैफ़ियत नहीं देगा।"

"क्या जहाँपनाह की हुक्म-उदूली करेगा ?"

"इससे भी ज्यादा कर सकता है। वह बग़ावत भी कर बैठे, तो ताज्जुब नहीं।"

"मैं चाहती हूँ कि उसे बंगाल की सूबेदारी से हटाकर पंजाब का सूबेदार बनाकर भेज दूँ। मगर लाहौर उसकी मातहतीमें न रहे।"

"ऐसी बेइज्जती वह नहीं बदाश्त कर सकेगा।"

"वह सल्तनत का नौकर है, अगर नमकहरामी करेगा, तो सजा दी जाएगी।"

"वह महज नौकरी ही नहीं है, सिपहसालार है, सारी फ़ौज उसके हाथ में है, फ़ौज उसे प्यार भी करती है। इसके सिवा उसने हमेशा सल्तनत की ख़िदमत बहादुरी और दयानतदारी से की है।"

"जहाँपनाह का यही हाल रहा, तो यह सल्तनत आँधी में उखड़े हुए दरख़्त की तरह धूल में मिल जायगी। मैं उसे पंजाब में अपने सामने रखूँगी, उसकी ताक़त को कभी न बढ़ने दूँगी।"

"जो जी में आये, सो करो। नूरजहाँ, तुम्हारे कहने से मैंने उसे सिपहसालार के पद से हटाकर उसी के शागिर्द

परवेज़ की मातहती में बंगाल का सूबेदार बनाया, अब तुम्हें यह भी नहीं पसंद है। प्रिये ! सल्तनत में क्यों आग लगाती हो, सब काम तो ठीक-ठीक हो रहा है ।"

"तब जहाँपनाह, अपनी सल्तनत को सँभाल लो, अगर मुझ पर भरोसा नहीं।"

"नहीं प्रिये, मेरी सल्तनत है शराब और स्वर-लहरी, लाओ, मैं उसमें डूब जाऊँ, फिर जो जी में आवे, वह तुम करना। इस मुग़ल-तख़्त और उसके मालिक की मलिका तुम हो।"

"जहाँपनाह को आदाब हो, जलाल मुल्ला ने जो काबुल में बग़ावत का झंडा उठाया है, उसके लिए क्या हुक्म है ? मेरा ख़याल है, जहाँपनाह को ख़ुद चलना चाहिए ।"

"अच्छी बात है, तैयारी कर लो। अब लाओ एक प्याला, और एक तान सुना दो, जिससे तबियत हरी हो जाय।"

(४)

लाहौर से कुछ इधर शाही छावनी पड़ी थी । बादशाह एक गाव तकिए के सहारे लेटे थे। नूरजहाँ शराब की सुराही आगे धरे जाम भर-भरकर बादशाह को देती, प्रत्येक बार कहती—"बस, अब नहीं ।" बादशाह हाथापाई करके कहते—"एक—बस—एक और।"

आसफ़उद्दौला ने तंबू में प्रविष्ट होकर कहा—"महावतख़ाँ ख़ुद आए हैं, और जहाँपनाह की क़दमबोसी किया चाहते हैं।"

नूरजहाँ ने कहा—"मुलाक़ात न होगी। कह दो।"

बादशाह चौंक उठे। उन्होंने कहा—"यह क्यों नूर, वह सिर्फ़ मिलना चाहते हैं।"

"कुछ जरूरत नहीं है जहाँपनाह, उसे अभी इसी वक्त पंजाब को रवाना हो जाना चाहिए।"

आसफ़ ने बादशाह की ओर देखकर कहा—"क्या जहाँपनाह का यही हुक्म है?"

"हाँ, यही हुक्म है।"

आसफ़ के चले जाने पर बादशाह ने कहा—"नूरजहाँ, सल्तनत के इतने बड़े उमराव को इस क़दर बेइज्ज़ती करना क्या ठीक हुई?"

"बिल्कुल ठीक है जहाँपनाह, इससे पहले उसने एक ख़त अपने दामाद के हाथ भेजा था।"

"उसमें क्या लिखा था?"

"वह हुजूर के सुनने क़ाबिल नहीं।"

"तुमने क्या जवाब दिया?"

"कुछ नहीं, उसके दामाद का सिर मुँड़ा, गधे पर सवार करा-कर महाबत के पास भेज दिया।"

"ओफ़! नूर! जो चाहे सो करो, एक प्याला शीराज़ी मिलाकर दे दो। कलेजा जैसे निकला जा रहा है।"

(५)

हिंदू-कुलपति महाराणा उदयपुर के अपने निवास में बैठे कुछ

परामर्श कर रहे थे। द्वारपाल ने सूचना दी—"मुग़ल-सेनापति महाबतख़ाँ आए हैं।"

महाराणा ने आश्चर्य से देखकर कहा—"उन्हें आदर-पूर्वक ले आओ।"

सेनापति का अचानक आ जाना राणा के लिये आश्चर्य की बात थी। महाबतख़ाँ ने आकर राणा को प्रणाम किया। राणा ने सादर स्वागत करके पूछा—"सेनापति, यों अचानक बिना सूचना दिए कैसे आ गए?"

महाबतख़ाँ ने कहा—"मैं सेनापति नहीं हूँ राणा साहब!"

राणा ने हँसकर कहा—"समझ गया, अब आप बंगाल के सूबेदार हैं।"

"वह भी नहीं महाराणा!"

"यह क्या तब अब आप क्या हैं?"

"कुछ नहीं, सिर्फ़ महाबतख़ाँ, एक पुराना सिपाही, जिसकी रगों में राजपूतों का रक्त है, पर जो शरीर से मुसलमान है।"

महाराणा ने चिंतित होकर कहा—"क्या बात है ख़ाँ साहब? ख़ैराफ़ियत तो है?"

"सब ख़ैराफ़ियत है राणा साहब, मैं सिर्फ़ एक नौकरी की खोज में आपके यहाँ आया हूँ। यदि एक सेनापति का पद आपकी अधीनता में मुझे मिले, तो मैं आशा करता हूँ कि मैं उसका अपमान न करूँगा।"

"मैं अभी आपको सारी मेवाड़ की सेना का सेनापति बनाता हूँ।"

"महाराणा की जय हो। मेरी एक अर्ज़ी और है।"

"कहिए?"

"मैं कुछ तनख्वाह पेशगी लेना चाहता हूँ।"

राणा हँस पड़े। बोले—"क्या चाहिए?"

"सिर्फ़ पाँच हज़ार चुने हुए सवार और छः महीने की छुट्टी।"

"यह कैसी तनख्वाह है, ख़ाँ साहब?"

"शायद महाराणा को मंज़ूर नहीं।"

"मंज़ूर है। आप सैनिकों को स्वयं चुन लीजिए। अगर हर्ज नहीं, तो बता दीजिए कि सवारों का क्या कीजिएगा?"

कुछ नहीं, जहाँपनाह से ज़रा मुलाक़ात करूँगा। मैं मिलने गया था, मुलाक़ात नहीं हुई। दामाद को ख़त लेकर भेजा, तो उसका सिर मुड़ाकर गधे पर सवार कराया गया। अब ज़रा एक बार बादशाह से मिलना ज़रूरी है। फिर ज़िंदगी-भर आपके चरणों का दास रहूँगा।"

राणा ने गंभीर होकर कहा—"मैं बचन दे चुका। मुझे कुछ आपत्ति नहीं।"

महाबतख़ाँ ने उच्च स्वर से कहा—"महाराणा की जय हो।"

(६)

"उसके साथ फ़ौज कितनी है?"

"सिर्फ़ पाँच हज़ार।"

"और उस पर उसकी यह जुर्रत !"

"बेगम साहिबा, बादशाह और फ़ौजदार उस पार है, और पुल पर महावतखाँ का क़ब्जा है।"

"तब तुम तमाशा क्या देख रहे हो ?—पुल पर धावा बोल दो।"

"पुल पर जाना नामुमकिन है।

"तब तैरकर पार हो जाओ।"

"मलिका, यह खतरनाक है।"

"धावा करो। महावत, हमारा हाथी दरिया में छोड़ दो। तीर और गोलियों की परवाह नहीं। बादशाह सलामत दुश्मन के क़ब्जे में जाया चाहते हैं।"

* * * *

"बस, अब मार-काट बंद करो। मुग़ल-सिपाहियों, हथियार रख दो। फ़िज़ूल जानें मत दो। मुझे सिर्फ़ बादशाह से मिलना है।"

जहाँगीर ने खेमे से बाहर आकर कहा—"यह क्या है महावत ?"

"जहाँपनाह, बंदा हाज़िर है।"

"मामला क्या है ? यह लड़ाई कैसी ?"

"कुछ नहीं हुज़ूर, जब मैंने देखा कि किसी तरह जहाँपनाह से मुलाक़ात नहीं हो सकती, तो मजबूरन यह रास्ता अख्तियार करना पड़ा।"

"हमारी फ़ौज कहाँ है ?"

"सब उस पार है। पुल मैंने जला दिया है।"

"समझ गया। महावत, मैंने तुम्हें माफ़ किया, अपनी फ़ौज वापस कर दो।"

"हुज़ूर, ये लोग बिना मेरी ज़िंदगी की जमानत लिए जाना नहीं चाहते।"

"इसका मतलब ?"

"मतलब यही कि महावतखाँ जहाँपनाह का पालतू कुत्ता नहीं कि जब आप चाहें 'तू' करके बुलावें, और वह दुम हिलाता हुआ चला आवे, आप जब लात मारकर दुतकार दें तो दुम दबाकर भाग जाय।"

बादशाह ने ग़ुस्से से होंठ चबाकर कहा—"ख़ैर क्या जमानत चाहते हो ?"

"यह फिर देखा जायगा, इस वक्त तो शिकार का वक्त हो गया है। तशरीफ़ ले चलिए।"

"इस वक्त शिकार ? और मेरा घोड़ा ?"

"मेरा यह घोड़ा हाज़िर है।"

"मलिका कहाँ है ?"

"वह महफ़ूज़ जगह में हैं, उन्होंने दरिया में हाथी डाल दिया था, मेरे सिपाही उन्हें निहायत अदब से ले आए हैं।"

"समझ गया। हम लोग तुम्हारे क़ैदी हैं !"

"हुज़ूर, मैं इतनी गुस्ताख़ी तो नहीं कर सकता। मगर इतनी

अर्ज़ ज़रूर है कि शाहंशाह अकबर के तख्त पर से इस वक्त जो ताक़त हुकूमत कर रही है, वह एक पागल और बे-लगाम ताक़त है, उससे इंसाफ़ तो हो ही नहीं सकता, अलबत्ता यह तख्त मिट्टी में मिल सकता है।"

"तुम्हारी मंशा क्या है महावत ?"

"एक बार मुलाक़ात किया चाहता था, आप तशरीफ़ रखिए।"

"अच्छी बात है, कहो किसलिये मुलाक़ात चाहते थे ?"

"हुज़ूर मेरा एक मुक़दमा है।"

"किसके खिलाफ़ ?"

"वह चाहे भी जिसके खिलाफ़ हो, मगर मैं हुज़ूर से यह उम्मीद करता हूँ कि आप इंसाफ़ करेंगे।"

"मैं ज़रूर इंसाफ़ करूँगा।"

"मेरा मुक़दमा मलिका साहिबा के खिलाफ़ है।"

"क्या मुक़दमा है ?"

"उन्होंने शाहज़ादा ख़ुशरू की हत्या कराई है।"

"और ?"

"किसी ख़ास मतलब से वह हत्या उन्होंने शाहज़ादा ख़ुर्रम के सिर मढ़ी है।"

"और ?"

"वह जहाँपनाह की आड़ में मनमाना ज़ुल्म करती हैं। इससे हुज़ूर के शाही रुतबे और नेकनामी में ख़लल पहुँचता है।"

"और ?"

"बस, हुजूर अगर इनका सुबूत चाहें तो·······

"मैं इन बातों को जानता हूँ। सच है।"

"इन क़ुसूरों की सजा मौत है·······।"

"महावत·······।"

"हुजूर, इंसाफ़ की दुहाई है। यह मलिका के क़त्ल का हुक्मनामा है। दस्तख़त कीजिए।"

"महावत·······।"

"हुजूर, गुनाह साबित है, इंसाफ कीजिए।"

"तब लाओ।" जहाँगीर ने दस्तख़त कर दिया, और कहा—"महावत, अब और क्या चाहते हो?"

"कुछ नहीं जहाँपनाह! अब आप आराम फ़र्मावें।"

(७)

जहाँगीर और नूरजहाँ दो पृथक्-पृथक् ख़ेमों में नजरबंद थे। दोनों पर सख्त पहरा था, परंतु उनके आराम का काफी-बंदोबस्त किया गया था। नूरजहाँ ने महावत से कहला भेजा—"मैं मरने को तैयार हूँ, मगर एक बार बादशाह को देखना चाहती हूँ।"

महावत ख़ाँ बादशाह की अनुमति पाकर उसे शाही डेरे में ले आए। जहाँगीर ने उसे देखते ही आँखें नीची कर लीं।

नूरजहाँ ने कहा—"जहाँपनाह! ये दस्तख़त आपके हैं?"

बादशाह चुप रहा। नूरजहाँ ने कहा—"समझ गई, तब

यह जाल नहीं है ! यही मैं जानना चाहती थी। मेरे ख़ाविंद, मैं मरने को तैयार हूँ, मगर हुज़ूर एक बार उन हाथों को चूम लेने दीजिए, जिन्होंने मुझे प्यार किया था, और जिन्होंने मेरे मौत के परवाने पर दस्तख़त किए हैं।" इतना कहकर वह बादशाह की तरफ़ झपटी। बादशाह ने कसकर उसे छाती से लगा लिया, और भरे हुए कंठ से कहा—"नूर, मैंने दस्तख़त नहीं किए हैं। तुमने सैकड़ों क़ुसूर किए, मेरे प्यारे बच्चे का ख़ून किया—मैंने कब इसे देखा, तब ये दस्तख़त मेरे कैसे हो सकते हैं ! मेरे हाथों ने दस्तख़त किए जरूर हैं, पर हैं ये महावतख़ाँ के दस्तख़त।"

नूरजहाँ ने एक बार महावतख़ाँ की ओर देखा, और सिर झुका लिया। वह धीरे-धीरे बादशाह के बाहु-पाश से पृथक् हुई, और फिर महावतख़ाँ के सामने खड़े होकर बोली—"महावत, अब तुम मुझे क़त्ल करो। पर एक औरत पर फ़तह हासिल करके तुम कुछ सुर्ख़रू न होगे। ख़ैर।" नूरजहाँ और कुछ न कह सकी, वह टप-टप आँसू गिराने लगी।

शायद नूरजहाँ ने जिंदगी में पहली बार ही आँसू गिराये थे।

बादशाह से न रहा गया। उन्होंने अवरुद्ध कंठ से कहा—"महावत !"

"जहाँपनाह !"

"नूरजहाँ की जान बख़्श दो। मैं तुमसे यह भीख माँगता हूँ।"

क्षण-भर महावतख़ाँ चुप रहे, और फिर उन्होंने एक लंबी साँस ली। उनके मुँह से निकला—"जहाँपनाह की जैसी मर्ज़ी।"

इसके बाद महावतख़ाँ तीर की भाँति ख़ेमे से बाहर निकल गया, और दोनो प्रेमी परस्पर पाश-बद्ध होकर रोने लगे। क्या ये प्रतापी सम्राट् और दर्प-मूर्ति सम्राज्ञी थे!

(८)

आज बादशाह हाथी पर सवार होकर शिकार करने निकले हैं। महावतख़ाँ का कड़ा पहरा बादशाह पर है। बादशाह की जिद से मलिका भी हाथी पर सवार हो गई है। महावतख़ाँ साथ है। रावी के किनारे-किनारे धीरे-धीरे हाथी बढ़ रहा था, और फ़ौज का एक टुकड़ा धीरे-धीरे पीछे आ रहा था।

अचानक चीत्कार करके नूरजहाँ ने कहा—"महावत, हौदा ढीला है, ठीक करो। महावत जल्दी से हाथी की पीठ की ओर चला गया। क्षण-भर में नूरजहाँ बिजली की भाँति कूदकर हाथी की गर्दन पर आ बैठी, और जोर से अंकुश का एक वार करके हाथी को नदी में हूल दिया। क्षण-भर में ही देखते-देखते यह सब कौतुक हो गया। जब तक महावतख़ाँ दौड़े, तब तक हाथी दरिया में पहुँच चुका था। बादशाह ने विस्मित होकर नूरजहाँ के साहस को सराहा। नूरजहाँ ने दृढ़ स्वर से कहा—"जहाँपनाह, बेख़ौफ़ बैठे रहें।"

* * * *

हाथी सकुशल दरिया-पार उतर आया। नूरजहाँ भूल गई थी कि किस प्रकार उसका मृत्यु-दंड टाला गया था। बादशाह शराब के घूँट पी रहे थे, उन्होंने प्याला ख़ाली करके कहा—"नूर, तुमने बड़ी हिम्मत से मेरी जान बचाई।"

"और जहाँपनाह ने भीख माँगकर मेरी जान बचाई। कहिए, बादशाह कौन है?"

"तुम, नूर! एक प्याला अब और दे दो। और ज़रा दिलरुबा उठाकर एक विहाग की तान सुना दो।"

क़ैदी की रिहाई

(१)

सूर्य-वंश-कुल-कमल-दिवाकर, हिंदू-पति महाराणा राजसिंह अपने अटाले में बैठे काँसा आरोग रहे थे। उनके सामने और अगल-बग़ल चुने हुए सरदार और भाई-बंद बैठे थे। सबके आगे सोने के थाल और अन्य पात्र थे, परंतु महाराणा का भोजन पलाश के पत्तों के दोनों में परसा हुआ था।

वसंत का प्रारंभ था, धूप निकल रही थी, महल की दीवार पत्थर के टुकड़ों की थी, इनमें खिड़कियाँ लगी हुई थीं, जिनमें से होकर सूर्य का प्रकाश वहाँ पड़ रहा था। महल का फ़र्श स्वच्छ मक़राने के पत्थरों का था। महाराणा मध्य बिंदु की भाँति, बीच में, एक सीतलपाटी पर बैठे थे। उनका क़द मझोला, मूछें एक आध पकी हुईं, रंग साँवला, आँखें बड़ी-बड़ी थीं। डाढ़ी नहीं थी। वह बदन पर एक रेशमी बहुमूल्य चादर डाले थे। सिर पर दूध के झाग के समान सफ़ेद पगड़ी थी, जिस पर एक बड़ा-सा लाल लगा तुर्रा था। कंठ में पन्ने का एक अत्यंत मूल्यवान् कंठा था। उनका सीना चौड़ा, उठान ऊँची और शरीर बलवान् तथा फुर्तीला था। उनकी कमर में पीले रंग की रेशमी

धोती थी। उनके सिर के बाल काले, और बड़ी-बड़ी आँखें मस्ती से भरपूर थीं।

महाराणा के दाहने हाथ पर उनके ज्येष्ठ पुत्र, कुमार भीमसिंह जी, बैठे थे। दोनो में बीच-बीच में धीमे-धीमे बातें हो रही थीं। कुछ सरदार कान लगाकर बातें सुन रहे थे, और कुछ अपने खाने में लगे हुए थे।

"बादशाह आलमगीर से जो यह नई संधि हुई है, यह हम दोनों के लिये शुभ है। अब देखना यही है कि धूर्त बादशाह उसका पालन भी करता है, या नहीं।" महाराणा ने सहज गँभीर स्वर में कुँवर भीमसेन से कहा।

कुमार ने कुछ खिन्न होकर कहा—"रावरी जैसी मर्जी हुई, वही हुआ। परंतु आलमगीर पर कभी विश्वास नहीं किया जा सकता। वह पूरा धूर्त और दुष्ट आदमी है।

महाराणा ने जरा ऊँचे, किंतु मृदु स्वर से कहा—"इस संधि से दो शत्रु परस्पर मित्र हो जायँगे, देश की बिगड़ी हुई दशा सुधरेगी। कृषि, व्यापार और व्यवस्था ठीक होगी। देश में अमनो-अमान क़ायम होगा।"

एक सरदार ने खाते-खाते कहा—"घणी खम्मा अन्नदाता, हम तो चारो तरफ़ से लूट-मार और जुल्म के समाचार सुन रहे हैं। संधि हुए अभी एक मास भी नहीं हुआ, कई घटनाएँ हो चुकी हैं। ग़रीब किसानों के खेत उजाड़े और गाँव जलाए जा रहे हैं!"

महाराणा ने जलद-गंभीर ध्वनि से कहा—"इन सब शिकायतों को लेकर पारसोली के राव केसरीसिंह बादशाह के पास भीम के थाने, शाही छावनी, गए हैं जब तक उनका जवाब नहीं आ लेता, उनके विरुद्ध कुछ राय क़ायम करना ठीक नहीं।"

कुँवर भीमसेन ने लाल-लाल आँखों से महाराणा की ओर देखकर कहा—"और इसका क्या कारण है कि एक महीना होने पर भी बादशाह ने यहाँ से छावनी नहीं उठाई ?"

पुत्र का रोष देख महाराणा हँस दिए। उन्होंने कुँवर की पीठ थपथपाकर कहा—"गुस्सा मत करो, मेरे वीर पुत्र ! इतना बड़ा बादशाह अपनी जिम्मेदारी को भी तो समझेगा।"

"परंतु उसका विश्वास नहीं किया जा सकता। उसने अभी तक छावनी क्यों नहीं तोड़ी ? महाराज, दिल्ली के बादशाह से ईमानदारी की आशा रखना व्यर्थ है। मुझे भय है कि वह अवश्य कुछ षड्यंत्र रच रहा है।" कुमार ने उसी तीव्र स्वर में कहा।

महाराणा एकाएक गंभीर हो गए। उन्होंने कहा—"उसे ईमानदारी सीखनी होगी। संधि, संधि है। देश में शाँति और सुव्यवस्था बनाए रखने के लिये…………"

महाराणा की बात मुँह की मुँह ही में रह गई। धड़ाके से कमरे का द्वार खुला और धूल, गर्द तथा ख़ून से लथपथ एक आदमी हवा के झोंके के साथ गिर पड़ा गिरते ही उसने

आर्त-नाद के स्वर में कहा—"दुहाई अन्नदाता, क्या आपने कुछ सुना है ?"

महाराणा के हाथ का कोर हाथ ही में रहा। कुँवर ने पूछा—"कहो-कहो, क्या हुआ ?

"महाराज, परसोली के राव केसरीसिंह को क़ैद कर लिया गया, और उनके साथियों के सर काट डाले गए। श्रीमान् उन्हें बड़ा धोखा दिया गया। प्रथम विश्वासघात करके उन्हें भीतर बुलाया गया, पीछे बीस आदमी टूट पड़े। अकेले वीर ने सबसे लोहा लिया, पर एक आदमी बीस के सामने कैसे ठहरता! वह घायल होकर बंदी हुए। महाराज बड़ी कठिनाई से मैं संदेश लेकर आया हूँ। उन्हें कल प्रातःकाल सूर्योदय होने पर क़त्ल किया जायगा! उन्हें सेनापति रुहिल्ला-ख़ाँ बारह हजार सवारों की रक्षा में बदनौर के क़िले में ले गए।"

"क़त्ल कल, सूर्योदय होने पर ?" कुमार भीमसिंह हाथ का कौर छोड़ कर उठ खड़े हुए। सभी सरदार भोजन छोड़कर खड़े हो गए। कुमार ने मुट्ठी कसकर कहा—"यह असंभव है, अब हम संधि की मर्यादा नहीं रख सकते।"

सब सरदार एक स्वर से चिल्ला उठे—"कभी नहीं। चलो, अभी हम केसरी सिंह को छुड़वाएँगे।" कुमार की काली-काली आँखों से आग बरसने लगी, और वह क्रोध से थर-थर काँपने लगे।

महाराणा अभी तक चुप थे। उन्होंने गंगाजल से आचमन किया, अन्न को पाग पर चढ़ाया, और तलवार सूतकर कहा—"मैं संधि रद्द करता हूँ। वीरो, केसरीसिंह ने एक बार सिंह से मेरी प्राण-रक्षा की थी। वैसे भी वह मेरी भुजा है। इसके सिवा संधि और विग्रह का अभिप्राय यह है कि प्रजा अभय हो। केसरीसिंह को छुड़ाने का बीड़ा कौन लेता है ?"

कुँवर भीमसिंह ने कहा—"महाराणा, यह दास राव केसरी-सिंह को ला कर अन्न-जल ग्रहण करेगा।"

इसके बाद उसने सरदारों की ओर लक्ष्य करके, ललकारकर कहा—"ठाकराँ" कौन-कौन हमारे साथ जायगा ?"

सब चिल्ला उठे—"महाराणा की जय ! हम अभी तैयार हैं।"

महाराणा ने हर्षित हो अपनी तलवार कुमार की कमर में बाँध दी, और वह वीर-दल दर्प के साथ चल दिया।

(२)

वासंती वायु आधी रात के सन्नाटे में शिशिर के झोंके दे रही थी। अभी वर्षा हो चुकी थी। पथरीली धरती में कहीं-कहीं पानी भरा था। सड़कें साफ न थीं, और बहुत अँधेरी रात थी। चारों तरफ़ उजड़ बन था। कुछ फ़ासले पर खड़े हुए नंगे पर्वत बहुत भयानक प्रतीत हो रहे थे। बदनौर का किला सामने दूर दिखाई दे रहा था। उस घनी अँधेरी रात

में वह एक काले भूत की भाँति प्रतीत हो रहा था। इसी पथ पर एक छोटे-से क़द का आदमी अकेला ही घोड़े पर सवार, इधर से उधर चौकन्ना होकर देखता हुआ, बड़ी सतर्कता से आगे बढ़ रहा था। उसकी घनी काली डाढ़ी झब्बेदार साफ़ा और चमकीला जिरहबख्तर तथा कीमती अरबी घोड़ा साफ़ बता रहा था कि वह कोई उच्चपदस्थ मुग़ल-सरदार है। वह अपने असीलकाले घोड़े पर चढ़ा हुआ, उस कीचड़-भरे, पथरीले, ऊबड़-खाबड़ मार्ग में धीरे-धीरे चल रहा था। कभी वह ठंड से काँप उठता, कभी घोड़े की ठोकर से विचलित हो जाता। प्रतिकूल वायु तीर की भाँति उसे बेध रही थी। उसके ठंडे और दुःखदायी थपेड़ो से बचने के लिए उसने अपनी कमर से कमरपट्टा खोल कर मुँह पर लपेट लिया था। केवल उसकी आँखें और नाक का अग्र भाग ही बाहर निकला हुआ था।

एकाएक घोड़ों की टाप की आहट सुनकर वह चौंका। थोड़ी देर में देखा, सामने कुछ सवारों का दल आ रहा है। कुछ ही देर में उसने उनकी चमचमाती तलवारों और भालों की झलक देखी। वह हटकर झाड़ी में छिप कर खड़ा हो गया। एक-एक करके सवार सामने आए। सबके आगे कुँवर भीमसेन थे। वह मश्की घोड़े पर सवार, सीना ताने, चारों तरफ़ देखते हुए आगे बढ़ गए। उनके पीछे के सवारों को मुग़ल ने गिना। कुल दस थे। उसका माथा सिकुड़ गया।

उसने भुनभुनाकर कहा–"या ख़ुदा, ख़ुद कुमार भीमसेन इस आधी रात में कहाँ जा रहे हैं ? इस बेवक्त के सफ़र का क्या मतलब है ?"

सवार आगे बढ़ गए। वह भी अपने रास्ते पर चला। आधी मील जाने पर उसने फिर घोड़ों की टाप सुनी। बहुत तेजी से वह दल बढ़ा आ रहा था। मुग़ल झाड़ी में छिप गया। सवार सामने होकर गुज़रने लगे। कुल दस सवार थे। सब सिर से पैर तक हथियारों से लदे हुए। उनके आगे श्वेत रंग के ऊँचे घोड़े पर जो व्यक्ति था, उसे देख इस मुग़ल के छक्के छूट गए। उसने फिर भुनभुनाकर कहा—"ख़ुद महाराणा भी इन चुनीदा सवारों के साथ हैं ! जरूर आज बादशाह की ख़ैर नहीं हैं।"

वह ज़रा तेजी से फिर आगे बढ़ा। कुछ ही देर में उसे फिर घोड़ों की टाप का शब्द सुनाई दिया। उसने छिपकर देखा कुल दस थे। सब के घोड़े क़ीमती थे, परंतु इनके पास हथियारों के स्थान पर कुदाल और पत्थर तोड़ने के हथौड़े थे। मुग़ल ने साहस करके पूछा—"भाइयों, इस अँधेरी रात में कहाँ जा रहे हो ? क्या बदनौर के क़िले में कुछ काम करने के लिए तुम्हें बुलाया गया है ?"

एक ने हँस कर कहा—"हाँ जी, एक पहाड़ी कौए का घोसला तोड़ना है। वह..........के क़िले में ही है।" बोलनेवाला ही-

ही करके हँस दिया । वे आगे बढ़ गए । किसी ने पीछे फर कर न देखा ।

मगर वह मुगल कुछ देर वहीं खड़ा सोचता रहा । उसने मन-ही-मन भुनभुनाकर कहा—"आसार अच्छे नहीं नजर आते । मुझे क़िले में लौटना ही पड़ेगा । और, बादशाह आलमगीर को इस आने वाली मुसीबत से सावधान करना पड़ेगा । उसने फिर घोड़ों की टाप सुनी । और क्षण-भर में और दस सवार हथियारों से लैस उसके सामने होकर गुजर गए । अब उसने अपना कर्तव्य निर्णय कर लिया ।

वह लोमड़ी की भाँति चक्कर काट कर उस अगम पार्वत्य प्रदेश में घुसकर ग़ायब हो गया । ऐसा प्रतीत होता था, मानो उस जंगल का चप्पा-चप्पा जमीन उसकी देखी-समझी हुई है ।

(३)

चालिसों व्यक्ति चुपचाप अपने-अपने घोड़ों पर निस्तब्ध भाव से खड़े थे । सामने लूनी-नदी का तीव्र प्रवाह मर-मर शब्द करता बह रहा था । इस समय आँधी बढ़ गई थी, और वर्षा भी होने लगी थी । ठंडे पानी की वे बूँदें हवा के झकोरे के साथ तीर-सी लगती थी । धीरे-धीरे वर्षा बढ़ चली । ओले भी गिरने लगे । उन की बौछारों से घोड़े घबराकर हिन-हिनाने लगे । नदी के पास क़िले की गगन चुंबी दीवारें थीं । उसके नीचे ढालू पर्वत था । क़िले में प्रकाश था । सर्वत्र सन्नाटा और अंधकार था ।

"अपने-अपने घोड़ों से उत्तर पड़ो।" महाराणा ने मृदु स्वर में कहा। "वे आँधी और मेह से घबरा गए हैं। संभव है, वे हिनहनाकर और उछल-कूदकर क़िले के आदमियों को जगा दें। उन्हें क़िले के नज़दीक रखना ठीक नहीं। दस आदमी इन्हें लेकर यहीं इनकी नगरानी करो। हमें लौटती बार इनकी ज़रूरत पड़ेगी। बाक़ी वीर हमारे साथ आगे बढ़ो।" महाराणा इतना कहकर नदी में घुस पड़े। उनके पीछे कुमार और कुमार के पीछे तीस वीर उस अगाध जल में पैठ गए।

"जल छाती से भी अधिक है महाराज !" कुमार ने चिल्लाकर कहा। "सब सरदार सावधानी से आगे बढ़ें। ठहरिए, मैं आगे आता हूँ। क़िला मेरा है, मैंने ही केसरीसिंह के उद्धार की प्रतिज्ञा की है, वह प्राण देकर भी पूरी करूँगा।

धीरे-धीरे सभी वीरों ने नदी को पार किया। पानी की लहरें वायु-वेग से पत्थर की चट्टानों पर उछल रही थीं। पर प्रत्येक ने एक-दूसरे को कसकर पकड़ रक्खा था। अंत में उस पार जा लगे।

महाराणा ने हँसकर कहा—"भीमसेन, तुम तैरने की कला में इतने दक्ष हो ?"

भीमसेन ने हँसकर कहा—"महाराज, मैं पानी का चूहा हूँ।" उसने अपनी पोशाक निचोड़ी, और पगड़ी से पानी झाड़ा।

सभी वीर अपना-अपना सामान ठीक करने लगे।

महाराणा ने तलवार सूतकर कहा—"अच्छा, अब सब कोई चुपचाप हमारे पीछे आवें। एक शब्द भी न होना चाहिए।"

भीमसिंह ने आगे बढ़कर कहा—"श्रीमान ! मेरा कार्य मुझे करने दीजिए।" और आगे वह बढ़ गया। सब कोई उसके पीछे-पीछे चले। क़िले के निकट आने पर महाराणा ने सब मज़दूरों को अपना काम करने का संकेत किया। उन्होंने बड़ी सावधानी तथा फुर्ती से दीवार पर जीना बना लिया। इसके बाद सब लोग आहट पाने के लिए कुछ देर रुक गए। कुमार सर्वप्रथम जीने से सफ़ीलों पर चढ़ गए, इसके बाद महाराणा और फिर सब सरदार।

कुमार और महाराणा ने सब वीरों को वहीं दीवार पर लेटे रहने का आदेश दिया, और स्वयं पंजों के बल चलकर प्रहरी के ठीक पीछे जा खड़े हुए। आहट पाते ही प्रहरी ने गर्दन फिरा कर देखा ही था कि कुमार की तलवार अपना काम कर गई। प्रहरी छिन्न-मस्तक हो पृथ्वी पर गिर गया।

इस के बाद ही महाराणा ने उच्च स्वर से भेरी-नाद की आज्ञा दी। तीस भेरी वज्र नाद की भाँति बज उठीं। रात्रि की निस्तब्धता कोलाहल में परिवर्तित हो गई। इस समय मूसलाधार पानी बरस रहा था। तीसों व्यक्ति तीर की भाँति एक ओर को भाग कर आँखों से ओझल हो गए, वे शीघ्र ही बंदी-घर में पहुँचे। उन्होंने आनन्-फानन् उसकी छत में

बड़ा सा छेद कर लिया, और कूद गए। इसके बाद कुल्हाड़ियों से मजबूत द्वार भी तोड़ डाला।

क़िले के लोग उस भयानक रात में यह कोलाहल सुन कर भयभीत थे। किसी को न सूझता था कि क्या करे।

बंदीघर का द्वार भंग करके भीम सिंह ने कहा—"दरबार, आप यहीं ठहरें, मैं अभी आया।"

वह दो वीरों के साथ भीतर घुस गए।

(४)

क़ैदी सुख से खर्राटे ले रहा था द्वार-भंग के धमाके से उसकी आँखें खुल गईं। वह उठकर चटाई पर बैठ गया, और आँखें मलने लगा।

"सूर्योदय होने पर तुम क़त्ल किए जानेवाले हो, और इस समय सुख की नींद सो रहे हो" कुमार भीमसिंह ने कहा, और खिलखिला कर हँस पड़ा।

केसरीसिंह ने कुमार के स्वर को पहचान कर कहा—"असंभव, जब तक आप-जैसे स्वामी मेरे रक्षक हैं।" उसने अपनी टाँगें फैला दीं, और हाथों को ऊपर उठाकर हिला दिया। भारी-भारी बेड़ियाँ और हथकड़ियाँ झनझना उठीं।

"उठो, उठो, अभी हमें बहुत काम करना है।" कुमार ने केसरीसिंह को पकड़ कर उठाया। उन भारी बेड़ियों ने उसे उठने न दिया। तुरंत कुमार ने केसरीसिंह को उठा कर अपने कंधों पर बैठा लिया।

दोनों वीर बाहर आए। केसरीसिंह महाराणा के चरणों में लोट गए। महाराणा ने कहा—"यह शिष्टाचार का स्थान नहीं। चलो चलें कोलाहल बढ़ता आ रहा है। मशालें जल गई हैं।

"घणी खम्मा अन्नदाता, परन्तु अपने अथिति-सत्कार के कर्ता-धर्ता को तो धन्यवाद दे लूं। कुमार, जरा आप कष्ट कीजिए। अन्नदाता, आप क़िले से बाहर पधारें, हम अभी आते हैं।" दोनों वीर क्षण-भर में से ओझल हो गए।

(५)

नदी-तीर पर आकर कुमार ने केसरीसिंह को कंधे से उतारा उसकी भारी बेड़ियाँ खनखना उठीं। कुमार ने कहा—" बड़ा उजड्ड सवार रहा यह। मेरा कंधा चकना चूर कर दिया।"

सब लोग खिलखिला कर हँस पड़े। केसरीसिंह का हृदय कृतज्ञता से परिपूर्ण था। एकाएक भयानक प्रकाश फैल गया। लोगों ने देखा, क़िला धायँ-धायँ जल रहा है। महाराणा ने पूछा—"यह क्या हुआ ?"

कुमार ने हँस कर कहा—"कुछ नहीं महाराज, राव केसरी-सिंह इसी कौतुक के लिए जरा उधर गए थे।"

केसरी सिंह ने कहा "अपराध क्षमा हो महाराज, मैंने सोचा इस प्रकाश में बादशाह आलमगीर को श्री महाराज के दर्शन ही होजायँ, तो अच्छा।"

एक बार फिर जोर की हँसी का फ़व्वारा फूटा! एकाएक

क़िले का द्वार खुला, और सैकड़ों मशालें लिए चींटी के दल की भाँति मुग़ल-सेना अल्लाहो-अक़बर का नाद करती बाहर आई।

हमारे वीर यात्री एक बार फिर ज़ोर से हँसे, और नदी में पैठ गए। महाराणा ने तलवार सूतकर कहा—"सब कोई पार जाओ, मैं यहाँ शत्रु-दल को रोकूँगा।"

कुमार ने हँसकर कहा—"अन्नदाता, यह दास आपका सेनापति है। आप आगे पधारें। हम लोग यहाँ हैं।"

वह अपने दस साथियों के साथ घाट पर जम गए। राणा और उनके साथी सकुशल पार उत्तर गए, और उसके बाद कुँवर भी।

चलती बार मुग़ल सेनापति रुहिल्लाख़ाँ को निकट देखकर केसरीसिंह ने कहा—"ख़ाँसाहब! आपकी ख़ातिरदारी और रहने-सहने का ख़र्च फिर किसी समय चुका दिया जायगा। फ़िलहाल अपनी सज्जनता का इनाम लेते जाइए।"

उसने कुमार की पीठ से भाला खींचकर मारा। फ़ौजदार साहब की हीरा-जड़ी पगड़ी छप से पानी में जा गिरी। उसे लपक-कर अपने भाले की नोक पर ले लिया। रुहिल्लाख़ाँ किं-कर्तव्य-विमूढ़ की भाँति वहीं खड़ा रहा। उस दुर्घट समय में नदी-पार करने का उसे साहस नहीं हुआ।

तब तक महाराणा और उनके साथी अपने घोड़ों पर चढ़कर अपने मार्ग पर चल दिए थे।

हथिनी पेट में है?

(१)

डेढ़ सौ वर्ष पूर्व की बात है। जयपुर की गद्दी पर प्रसिद्ध महाराज जयसिंह विराजमान थे। महाराज की प्रतिभा, विद्या, शौर्य और उदारता दूर-दूर तक प्रसिद्ध थी। परंतु यह वह समय था, जब राजाओं के अधिकार अपरिमित हुआ करते थे। उनकी आज्ञा ही क़ानून थी। उस समय तक राजपूती जीवन की अकड़ और बाँकापन बिलकुल ही नष्ट नहीं हो गया था। राजा लोग निरंकुश शासन करते, तनिक-सी ही बात पर तन जाते, और बात-की-बात में ख़ून की नदी बह जाया करती थी। राज्य के ठिकानेदार प्रायः भाई-बंधु, संबंधी या माफ़ीदार होते थे। ये समय पड़ने पर प्राण और सर्वस्व देकर भी राज्य और राजा की रक्षा करते थे। इनकी सेवाओं के आधार पर राज्य में इनका मान और रुतबा होता था। ये सच्चे मन से जहाँ राज्य के लिये आत्माहुति करते थे, वहाँ अपने स्वातंत्र्य, अधिकार और आत्मसम्मान का भी बड़ा ख़याल रखते थे, राजा यदि कभी निरंकुशता का व्यवहार इनके साथ करता तो ये कभी न झुकते, चाहे ठिकाना मिट्टी में मिल जाता।

(२)

जयपुर में थलोट नाम का एक छोटा-सा ठिकाना है। इसकी वार्षिक आय अस्सी हज़ार है। उस समय के ठाकुर का नाम था गोकुलनाथसिंह।

दीपवली का उत्सव था, और महाराज को खास तौर उत्सव में सम्मिलित होने को बुलाया गया था। महाराज अपने पूरे लवाज़ में से ठिकाने में पधारने वाले थे। महाराज के पधारने से उत्सव की शोभा द्विगुण हो गई थी। अन्य सरदार भी उत्सव में आए थे। हाथी, घोड़ा, रथ, पालकी की भरमार थी। शराब के दौर चल रहे थे। वेश्याएँ नृत्य कर रही थीं। दूर-दूर से नटनियाँ अपना-अपना कृत्य दिखाने आई थीं। बड़े-बड़े फिकैत और पहलवान भी अपने करतब दिखाने आए थे। महाराज की सवारी आने का समाचार सुनकर ठाकुर साहब उनकी अगवानी को चले। चार कोस उधर ही महाराज की अगवानी की गई।

ठिकाने की दो चीजें राज्य-भर में प्रसिद्ध थीं। एक तो हथिनी थी, जिसका नाम भीमा था, और दूसरी एक वेश्या, जिसका नाम राजकुँवरि था, दोनो चीजों की बहुत प्रशंसा थी, और महाराज स्वयं उन्हें देखने को उत्सुक थे। हथिनी में करामात यह थी कि उसके दाँतों पर चौकी रखकर राजकुँवरि नाचा करती थी।

वही हथिनी और राजकुँवरि अपने पूरे शृंगार के साथ

ठाकुर साहब के साथ इस समय भी महाराज की अगवानी के लिये हाजिर थी। महाराज ने एक बार सुनहरी झूल और चित्र-विचित्र रंगों से सज्जित हथिनी की ओर देखकर मुस्किराकर कहा -"ठाकराँ, यही वह तुम्हारी करामाती हथिनी है ? और, वह पतुरिया कहाँ है ?"

ठाकुर ने विनम्र स्वर में तनिक हँसकर कहा—"अन्नदाता, यही हथिनी श्रीमानों की सेवा में उपस्थित है' और राजकुँवरि भी दरबार की सेवा में यहीं हैं।" इसके बाद ठाकुर का इशारा पाकर राजकुँवरि सिर से पैर तक जड़ाऊ पेशवाज़ पहने महाराज के सामने बिजली-सी आ खड़ी हुई। उसने एक बार धरती तक झुककर महाराज का मुजरा किया, और फिर हाथ बाँध कर खड़ी हो गई।

उस रूप, योवन और चंचलता के त्रिकुटे को महाराज देर तक देखते रहे, और फिर एकाएक हँस दिए। ठाकुर ने कहा—"अन्नदाता हुक्म हो, तो राजकुँवरि एक चीज़ सुनावे ?"

महाराजने कहा—"हाथी के दाँत पर ही इसे नचाना होगा?' उसी समय चंदन की एक जड़ाऊ चौकी हाथिनी के दाँतों पर लाकर रक्खी गई, और राजकुँवरि उछलकर उस पर चढ़ गई। साज़िंदे सफ़ बाँध कर खड़े हुए। राजकुँवरि ने ठुमकी ली, और एक तान फेकी लोगों में सन्नाटा छा गया। कुछ समय को वह समा बंधा कि सकते का आलम हो गया। जब संगीत-ध्वनि रुकी, और राजकुँवरि ने छम से कूद कर

महाराजा को मुजरा किया, तो महाराज को एकाएक होश आया। उन्होंने गले से मोतियों की माला उतारकर हँसते-हँसते उसके ऊपर फेंक दी। राजकुँवरि ने फिर एक बार महाराज को मुजरा किया, और उछलकर चौकी पर चढ़ गई। ठाकुर ने महाराज को हथिनी पर सवार होने का संकेत किया। महाराज हथिनी पर सवार हुए। सवारी आगे बढ़ी, और राजकुँवरि हथिनी के दाँतों पर रक्खी छोटी-सी चौकी पर अपनी कलाओं का विस्तार करती हुई चली। महाराज हथिनी और राजकुँवरि पर मुग्ध हो गए! उन्होंने उनकी भूरि-भूरि प्रशंसा की। उत्सव के बाद महाराजा जयपुर वापस पधारे।

(३)

जयपुर पहुँचकर महाराज ने ठाकुर को लिखा कि हथिनी और राजकुँवरि को राज्य में भेज दो, हम उन्हें रक्खेंगे।

ठाकुर ने जवाब में लिखा—

"हथिनी पेट में है, मिलना कठिन है, और जूठी पातर महाराज के योग्य नहीं।"

महाराज उत्तर पढ़कर आग होगए। उन्होंने मूछों पर ताव देकर जवाब लिखाया—"अच्छी बात है, बहुत जल्द पेट चीरकर हथिनी निकाल ली जायगी," इसके बाद महाराज ने ठाकुर पर तत्काल ही सेना भेज दी।

ठाकुर विवश क़िले पर चले गए, और अष्टभुजी देवी की प्रार्थना करके युद्ध को सन्नद्ध हुए। उस समय उन्होंने अलने

वृद्ध कामदार बीजावर्गी महाजन बाबा जी को बुलाकर कहा—
"बाबा जी, लाल जी की तुम्हें लाज है।" वृद्ध कामदार ने ठाकुर का मुजरा किया, और कुँवरि की रक्षा का वचन दिया।

उस छोटी-सी सेना में घनघोर युद्ध हुआ, और ठाकुर युद्ध में काम आए, तब बाबाजी को ठकुरानी ने बुला कर कहा—
"बाबा, ठाकराँ को आपने अंतिम समय जो वचन दिया था, उसकी याद कीजिए, और लाल की मातमी कराइए।"

बाबा साहब ने वचन दिया और चले गए।

(४)

बाबाजी जयपुर आए। राजकुँवरि से मिले, और कहा—
"बाई, हमने और तुमने दोनों ही ने ठिकाने का नमक खाया है। ठाकुर तो बात पर जूझ मरे, अब लाल जी का बंदोबस्त होना चाहिए। उनकी मातमी होनी चाहिए।"

दोनों ने परामर्श किया। बाबाजी बड़े भारी तबलची थे। राजकुँवरि ने हँसकर कहा—"बाबाजी, लालजी की मातमी तो हो जायगी, पर आपको तबलची बनना पड़ेगा।"

बाबाजी ने अपनी सफ़ेद दाढ़ी पर हाथ फेरा, और हँसकर कहा—"राजकुँवरी, वह भी मैं करूँगा।"

* * *

---

* मातमी का अर्थ यह है कि मृत ठाकुर के पुत्र के लिये राज्य से पगड़ी आवे, और बाँधी जाय। तबतक यह क्रिया नहीं होती पुत्र ठिकाने का अधिकारी नहीं समझा जाता।

महाराजा की वर्ष-गाँठ थी । राजकुँवरि सोलहो शृँगार किए उपस्थित थी । पर गाने का रंग ही न जमता था । महाराज मदिरा में लाल हो रहे थे । उन्होंने कहा—"राज, यह क्या बात है, उड़ी ही जाती हो, रंग क्यों नहीं जमता !"

राजकुंवरि ने कहा—"अन्नदाता, क़सूर माफ़, बिना अच्छा तबलची मिले गाने का कभी रंग नहीं जमता । वालेट का-सा तबलची यहाँ कहाँ ?"

महाराज ने कहा—"तब उसे बुलाया जाय ।"

राजकुँवरि ने कहा—"पर अन्नदाता, सदैव ठाकुर इसे मुँह-माँगा इनाम देते थे । बिना महाराज से ऐसा इनाम पाए वह न आवेगा ।"

महाराज ने कहा—"उसे यहाँ भी मुँह-माँगा इनाम मिलेगा । बुलाया जाय ।"

बाबा जी तबला लेकर बैठे । कुछ ही देर में वह समा बँधा कि लोग झूम गए । बाबाजी और राजकुँवरि ने अपनी कलाओं को ख़त्म कर दिया था ।

महाराज ने प्रसन्न हो कर कहा—"माँग, क्या माँगता है ?"

बाबाजी ने हाथ जोड़कर कहा—"अन्नदाता, वालेट के लालजी की मातमी कराई जाय ।" महाराज का मुँह लाल होगया ।

बाबाजी ने आगे बढ़कर कहा—"महाराज, मैं तबलची नहीं हूँ । दरबार को ख़ुश करने और लालजी की मातमी के लिये ही मैंने यह काम भी किया । ठाकुर बात के धनी थे,

बात पर उन्होंने जान दी, अब आप लालजी को क्षमा प्रदान करें।" राजकुँवरि ने भी महाराज से बहुत-बहुत अनुरोध किया। महाराज प्रसन्न हुए, और मातमी का हुक्म दे दिया। लालजी धूम-धाम से ठिकाने के स्वामी हुए।

(५)

नवयुवक ठाकुर पर यौवन और अधिकार का मद सवार हुआ। लफ़ंगे और खुशामदियों ने उसकी कच्ची बुद्धि को मनमाने ढंग पर लगाया। वृद्ध कामदार की शिक्षाएं उन्हें अब विष के समान प्रतीत होने लगीं। वह उनसे विरक्त और विपरीत आचरण करने लगे। धीरे-धीरे बाबाजी का ड्योढ़ियों में आना-जाना भी बहुत कम होगया। बाबाजी घर पर ही कचहरी किया करते थे। अंत में लोगों ने ठाकुर के ऐसे कान भरे कि युवक ठाकुर ने बाबा जी को मरवा देने का संकल्प कर लिया, और हुक्म भी दे दिया।

जब बाबाजी के पास ड्योढ़ियों से बुलावा पहुँचा, तो वह सब कुछ समझ गए। उन्होंने परिजन के सब लोगों को बुलाया। उनसे मिले। बहुतों को कुछ दिया भी। इसके बाद पीले वस्त्र पहने और मिठाई खा कर क़िले की ओर चले। घर के लोग कुछ भी भेद न जानते थे, वे कुछ भी न समझ सके।

क़िले में आकर सुना कि लालजी झरोखे में हैं। बाबाजी ने वहीं पहुँचकर ठाकुर को मुजरा किया, और कहा—"क्या हुक्म है?"

नवयुवक ठाकुर अवाक् रह गए । कुछ देर वह नीची दृष्टि किए बैठे रहे। उनके मुँह से बोली न निकली। न वह बाबाजी की ओर देख ही सके । यह देखकर बाबाजी हँस दिए।

लालजी खड़े हो गए। उन्होंने धीमे स्वर से कहा—"मैंने आप के मारने की आज्ञा दी है, जो इच्छा हो, कहिए।"

बाबाजी ने कहा—"ठिकाने का पूरा-पूरा ख़याल रखना, मेरे सब काग़ज़ात ठीक-ठाक हैं, उन्हें सँभाल लेना ।"

लालजी की आँखों में आँसू भर आए। उन्होंने कहा—"यह झरोखा तो आप देखते ही हैं।" वह रोने लगे।

बाबा साहब ने एक क्षण आकाश की ओर देखा, और झरोखे में कूद गए।

बिजली के समान यह समचार ठिकाने में फैल गया। झुंड-के-झुंड लोग इस वीर एवं साहसी वृद्ध के अंतिम दर्शन को आए । घटना आकस्मिक कहकर प्रसिद्ध की गई, पर असली भेद छिपा नहीं रहा।

धूम-धाम से अर्थी उठाई गई, और लालजी भी नंगे पैर श्मशान तक गए। राज्य में इस घटना का समाचार पहुँचा, और नवयुवक ठाकुर शीघ्र ही गद्दी से च्युत कर दिए गए। आज भी वालेट के वृद्ध पुरुष इस पवित्र त्यागी राज-सेवक के साहस की वीरता की गाथा गाते हैं।

शेरा भील

(१)

जिन दिनों औरंगजेब ने मेवाड़ की भूमि को चारों तरफ़ से घेर रक्खा था, उन दिनों की बात है। सारे राज्य-भर में सन्नाटा छा गया था। गाँव उजाड़ दिए गए थे। कुएँ पाट दिए गए थे। खेत जला दिए गए थे, और सब प्रजा-जन अपने पशुओं सहित अरवली की दुर्गम घाटियों में चले गए थे।

मुग़लों को बड़ी मुसीबत का सामना करना पड़ रहा था। हुकूमत और घमंड से मुग़लों के प्रत्येक सिपाही का मिज़ाज चौथे आसमान पर चढ़ा रहता था। ऐयाशी और रँगीली तबियत-दारी उनमें हो ही गई थी। बादशाह के प्रति कुछ उनकी ऐसी ज्यादा श्रद्धा भी न थी, क्योंकि शाही सेना में सिर्फ मुग़ल ही हों ऐसी बात न थी। मुग़ल, पठान, सैयद, शेख़ और न जाने कौन-कौन धुनिए-जुलाहे भर गए थे। वे सिर्फ़ अपनी नौकरी बजाने को सिपहगीरी करते थे। प्रत्येक सिपाही अपने जान-माल की हिफ़ाज़त करने के लिए व्यग्र रहता था और यथाशक्ति आरामतलबी चाहता था।

इसके विपरीत राजपूतों में अपने देश के लिए प्रेम था। वे प्राणों को हथेली पर रख रहे थे। वे लड़ते थे अपनी

प्रतिष्ठा के लिये, अपनी भूमि के लिये, अपनी जाति के लिये। वे अपने राजा को प्यार करते थे। राजा उनका स्वामी नहीं, मित्र था, इससे राजा के लिये प्राण तक देना उनके लिये परम आनंद की बात थी।

लूनी-नदी की क्षीण धारा टेढ़ी-तिरछी होकर उन ऊबड़ खाबड़ मैदानों से होती हुई अरावली की उपत्यका में घुस गई थी। उसका जल थोड़ा अवश्य था, परन्तु बहुत स्वच्छ और मीठा था। नदी के उत्तर की ओर सीधा पहाड़ खड़ा था, और बड़ा घना जंगल था। उस जंगल में भीलों की बस्तियाँ थीं। भीलों की जीविका जंगल ही से होती थी। शहद, लकड़ी मोम, पत्ते, टोकरी आदि बेच कर वे काम चलाते थे। समय पाने पर लूट मार, भी करते थे। बे अरावली की तराई में लंबी-लंबी और अगम्य घाटियों में अपनी बस्तियाँ बसाए रहते थे। वे ऐसे अगम्य स्थल थे कि अजनबी आदमी को एका एक वहाँ पहुँचना असंभव ही था। इसीलिये महाराणा ने उनके कुछ गाँवों को जहाँ-तहाँ रहने दिया था। उनसे महाराणा को बहुत सहायता मिलती थी वे प्रकट में अत्यंत जंगली भाव से रहते थे। वे बड़े निर्भय वीर थे। उनके पैने, विषैले बाण का एक एक हल्का-सा घाव भी प्राणांतक होता था। परन्तु वे बाहर से जैसे असभ्य थे, वैसे भीतर से नहीं। वे अपने सरदार के अनन्य भक्त थे उनमें अपना निजी संगठन था। वे अपने को राणा के कृत दास समझते थे। वे

निर्भय होकर बन-पशुओं का शिकार करते थे, खाते थे, और फिर दिन-दिन-भर खोते में लड़ना उनका सबसे जरूरी काम था।

वे इस बात की ताक में सदैव रहते थे कि धावा मारें, और मुग़ल-छावनी को लूट लें। बहुधा वे ऐसा करते भी थे। मुग़ल-सरदार उनसे बहुत दुखी थे। वे उनका कुछ भी न बिगाड़ सकते थे, और उनसे वे सदैव चौकन्ने रहते थे। कभी कभी तो वे रात को एकाएक मुग़ल-छावनी पर धावा मारते और किसान जैसे खेत काटता है, उसी भाँति मार-काट करके भाग जाते थे। वे इस सफ़ाई से भागते और ऐसी चालाकी से जंगलों में छिप जाते कि मुग़ल-सिपाही चेष्टा करके भी उन्हें न ढूँढ पाते थे।

(२)

उनके सरदार की शक्ल भेड़िए के समान थी। सब लोग उसे भेड़िया ही कहते थे। उसमें असाधारण बल था। सब दलों के सरदार उसका लोहा मानते थे। उसने युद्ध में सैकड़ों आदमी मार डाले थे, और सबकी खोपड़ियाँ ला-लाकर खूँटी पर-टाँग रक्खी थीं।

सर्दी के दिन थे, रात का सुहावना समय। वे आग के चारों तरफ बैठे तंबाकू पी रहे थे। उनके काले और चमकीले नंगे शरीर आग की लाल रोशनी में चमक रहे थे। एक राजपूत-सिपाही ने आकर, धरती पर भाला टेक कर भील-

सरदार का अभिवादन किया। भील-सरदार ने खड़े होकर राजपूत से संदेश पूछा। तुरंत ढोल पीटे गए। और, क्षण-भर में दो हज़ार भील अपने-अपने भालों को लेकर आ जुटे।

सैनिक राजपूत ने उच्च स्वर से पुकारकर कहा—"भील सरदारो ! राणा का हुक्म है कि आप लोगों के लिये राज्य की सेवा का सुअवसर आया है। दुश्मन ने देश को चारों ओर से घेर रक्खा है। राणा ने आपकी सेवा चाही है। अपना धर्म पालन करो।"

भीलों के सरदार ने अपने विकराल मुँह को फाड़कर उच्च स्वर से कहा—"राणाजी के लिए हमारा तन-मन हाज़िर है।"

उसी रात्रि में, तारों की परछाईं में, दो हज़ार भील वीर चुपचाप उस राजपूत-सैनिक का अनुसरण कर रहे थे। सबके हाथ में धनुष-बाण थे। वे सब अरावली की चोटियों पर रातों-रात चढ़ गए। उन्होंने अपने मोर्चे जमाए, पत्थरों के बड़े-बड़े ढेले एकत्र किए, और छिप कर बैठ गए।

(३)

दोपहर की चमकती धूप में भील-रमणियाँ मूँगे की कंठी कंठ में पहने, भारी-भारी घाँघरे का काछा कसे लूनी के तीर से पानी ला रही थीं। कोई जल में किलोल कर रही थी। लूनी का क्षीण कलेवर उन्हें देखकर कल-कल कर रहा था। एक युवती मिट्टी के घड़े को पानी में डाले उसमें जल के घुसने का कौतुक देख रही, थी और हँस रही थी। दो बालिकाएँ नदी-

किनारे चाँदी-सी चमकती बालू में खेल रही थीं। अकस्मात् एक तीर सनसनाता हुआ आया, और बालू में खेलती एक बालिका की अँतड़ियों को चीरता हुआ चला गया। बालिका के मुख से एक अफुस्ट ध्वनि निकली, और वह रेत में कुछ देर छटपटाकर ठंडी हो गई।

नदी-किनारे खड़ी भील-बालाओं ने आश्चर्य और रोष-भरी दृष्टि से नदी के दूसरे तट की ओर देखा। दो मुग़ल खड़े हँस रहे थे। एक युवती चिल्लाती हुई दौड़कर पेड़ों के झुरमुट में ग़ायब हो गई। गाँव में एक बूढ़ा, रोगी भील था, जो इस समय राणा के रण-निमंत्रण पर न जा सका था। उसका नाम शेरा था। वह अपने विशाल धनुष और तीन-चार बाणों के साथ बाहर आया। उसने पेड़ की आड़ में खड़े होकर दूसरे तट पर खड़े एक मुग़ल को लक्ष्य करके तीर फेंका। वह तीर वज्रपात की भाँति मुग़ल-सैनिक के हलक़ को चीरता हुआ कंठ में अटक रहा। सैनिक चीत्कार करके धरती पर गिर पड़ा। नदी-तट की सब स्त्रियाँ अपने घड़े वहीं छोड़कर गाँव में भाग आईं।

(४)

दो युवतियाँ जोर-जोर से ढोल बजा रही थीं। शेरा एक वृक्ष की आड़ से बाणों की वर्षा कर रहा था। पाँच सौ मुग़लों ने गाँव घेर रक्खा था। दो-तीन किशोर-वयस्क बालक दौड़-दौड़कर तीर चला रहे थे। स्त्रियाँ बाणों के ढेर

शेरा के निकट रख देती थीं। शेरा का बाण अव्यर्थ था। वह चीरता हुआ आर-पार जा रहा था। शेरा के चारों तरफ़ बाणों का मेह बरस रहा था।

शेरा ने देखा, मुग़ल-सैनिकों को रोकना कठिन है। दो-चार सिपाही गाँव में आग लगाने का आयोजन कर रहे हैं। उसने स्त्रियों को एकत्र कर, बच्चों-सहित उन्हें पीछे करके हटना शुरू किया। एक तीर उसकी भुजा में लगा। उसने उसे खींचकर फेंक दिया। गेरू का झरना जैसे नील पर्वत से झरता है, रक्त झरने लगा।

शेरा ने चिल्लाकर कहा—"सब कोई दूसरे जंगल में चले जाओ।" गाँव की झोपड़ियाँ धायँ-धायँ जलने लगीं। शेरा कौशल से बाण मारे जा रहा था और पीछे हट रहा था। उसकी वीरता, साहस और धीरज आश्चर्य-चकित करने वाले थे।

(५)

एक बलिष्ठ-भील-बाला तीर की भाँति अरवली की उपत्यकाओं की ओर भागी जा रही थी। उसने एक ऊँचे पेड़ पर चढ़कर अपनी लाल साड़ी को हाथ की लाठी पर ऊँचा किया। कुछ ही क्षण बाद चींटियों के दल की तरह भीलगण धनुष और बाण आगे किए पर्वत-शृंग से उतर रहे थे। स्त्री वृक्ष से उतरकर अपने रक्त वस्त्र को हवा में फहराती आगे-आगे दौड़ रही थी, पीछे-पीछे भीलों की चंचल पंक्तियाँ थीं।

गाँव में आकर देखा, गाँव की झोपड़ियाँ धायँ-धायँ जल

रही हैं। भील-सरदार ने हाथ ऊँचा करके बाघ की तरह चीत्कार किया। चारों तरफ़ भील वीर बिखर गए। बाणों की वर्षा होने लगी। मुग़ल-सैन्य में आर्तनाद मच गया। उनके पैर उखड़ गए। सैकड़ों ने घोड़े पानी में डाल दिए। उनके रक्त से नदी का जल लाल हो गया। सैकड़ों मुग़ल वहीं खेत रहे। युद्ध में भील वीर विजयी हुए। युद्ध से निवृत होकर सरदार ने शेरा को तलाश किया। वह सैकड़ो तीरों से छिदा हुआ एक झोपड़ी की आड़ में निर्जीव पड़ा था।

आज भी उस वीर वृद्ध शेरा के गीत भील-बालाएँ जब जल भरने आती हैं, गाती हैं।

झंडा

(१)

मारवाड़ का सौंदर्य दुनियाँ से निराला है। प्रकृति ने उसे वीरता का बाना पहनाया है। गर्मी की ऋतु थी, वैशाख बीत रहा था। खेतों में पके हुए सुनहरे गेहूँ और जौ लहरा रहे थे। किसान और किसान-पत्नियाँ गीत गाती हुई, हवा के झोंकों से अठखेलियाँ करती हुई खेतों में जुटी थीं। बहुत-से खेत कट गए थे, अन्न-राशि को सम्मुख पड़ा देख किसान आशा और आनंद में मस्त हो रहे थे। उनके कठोर परिश्रम की बूँदें सोने का ढेर बन गई थीं। पृथ्वी पर मारवाड़ के किसान के बराबर कौन परिश्रम करता होगा? जहाँ पानी की एक बूँद मोती के बराबर क़ीमती है।

खेतों के बग़ल में नंगी और दुर्गम अरावली की ऊँची पहाड़ियाँ वीर की भाँति अचल खड़ी थीं। उन पर चरवाहों की बकरियों के झुंड-के-झुंड बड़ी-बड़ी घासों में चर रहे थे। चरवाहों की अज्ञात यौवना बालाएँ अपने गहरे लाल रंग के घाघरों और गोटदार लुगड़ियों को हवा में फड़फड़ा कर दूर खेतों में काम करने वाले युवकों को मानो कोई नैसर्गिक संदेश भेज रही थीं।

बादशाह आलमगीर मर चुका था। उसके बड़े बेटे मुअज्जम ने अपने दोनों सहोदर भाइयों की हत्या करके डगमगाते तख्ते-ताऊस पर अपना जरा-जीर्ण पग रक्खा था। मारवाड़ के प्रतापी महाराज जसवंतसिंह के पुत्र अजीतसिंह ने आलमगीर की मृत्यु का सुयोग पाकर, बाघ की भाँति आक्रमण करके जोधपुर मुग़लों से छीन लिया था। अठारह वर्षों से दलित और छिन्न-भिन्न राठौर संगठित होकर अपनी शक्ति बढ़ा रहे थे। उजड़ा हुआ देश धीरे-धीरे कृषि और बनिज-व्यापार में लग गया था। भयभीत साहूकारों ने अपने हाथों को बाजार में पसार दिया था। जीवन की झलक मुरझाए हुए मारवाड़ में फैल गई थी। राठौर-कुल-वधुएँ उल्लास से गीत गाती, पानी भरती, खेत जाती, हँसती और ठठोली करती नजर आने लगी थीं। मारवाड़ के जीवन में वसंतोदय हुआ था।

वसंतोदय में जैसे हठात् लूओं का एक झोंका आ जाय, उसी भाँति मुग़ल-सैन्य ने एकाएक मारवाड़ को आक्राँत कर लिया। नए बादशाह ने अजीतसिंह पर क्रुद्ध हो अपने साले मिर्जा मुजफ्फरबेग को पचास हजार सैन्य देकर फिर से मारवाड़ को आक्राँत करने भेजा था। मारवाड़ का उल्लास विकसित होते ही छिन्न-भिन्न हो गया। अधकटे खेत बर्बर मुग़ल-सैनिकों के घोड़ों ने रौंद दिए। अन्न की राशियाँ देखते-देखते लूट ली गईं। गाँव जला डाले गए। मार्ग में चलने-फिरने वाले स्त्री, पुरुष, बालक अकारण काट डाले गए। आतंक

और भय से एक बार मारवाड़ फिर विचलित हो गया। राठौर-युवक अपने खेतों को उजड़ा और अपने घरों को धायँ-धायँ जलता छोड़ कर मुट्ठी में कसकर तलवार पकड़, ढाल कंधे पर डाल रोष से होठ चबाते जोधपुर-दुर्ग की ओर चल दिए।

(२)

जोधपुर के दक्षिण ओर के विस्तृत मैदान में छ हजार राठौर घोड़ों पर सवार, मूछें मरोड़े, बाँके साफ़े सिरो में बाँधे नंगी तलवार हाथ में लिए, लाल-लाल आँखें किए, चुपचाप पंक्ति-बद्ध खड़े सेना-नायक की आज्ञा की बाट जोह रहे थे। वे पेट के लिये सिपाही का बाना पहनने वाले सिपाही न थे, अपने स्त्री-बच्चों के अपमान और देश की बर्बादी से क्रुद्ध, स्वतंत्र प्रकृति राजपूत थे। प्रत्येक के नेत्रों से ज्वाला की लपटें निकल रही थीं, और संपुटित होठों से झूज मरने के इरादे प्रकट हो रहे थे। इस समस्त सेना का नायक एक नवयुवक राठौर था। उसकी आयु बाईस वर्ष के लगभग थी। वह एक चपल, सफ़ेद अरबी घोड़े पर सवार बिजली की भाँति सैन्य-निरिक्षण करता दौड़ रहा था। उसका स्वर्ण-कवच प्रभात की सुनहरी धूप में चमचमा रहा था। उसका सुन्दर, गौर वर्ण, उन्नत ललाट, चमकीली आँखें उसका महत्व प्रकट कर रही थीं। राठौर-वीर अधीर होकर आज्ञा की प्रतीक्षा कर रहे थे। सामने विपुल मुग़ल-सैन्य थी। उस सेना में कुछ तोपें भी थीं, जो पुर्तगीज़ गोलंदाजों के हाथ में थी। अनगिनत

हाथी कज्जल के पर्वत की भाँति खड़े थे। दोनों सेनाएँ युद्ध को सन्नद्ध खड़ी थी।

नवयुवक राठौर-सेनापति का नाम जुझारसिंह था। वह प्रख्यात वीर दुर्गादास का पुत्र था। सब सेना का निरीक्षण करने के बाद वह एक ऊँचे स्थान पर जाकर खड़ा हो गया। सेना-नायक उसकी बग़ल में आ खड़े हुए। उसने गंभीर स्वर में कहा—"वीर राठौरो, ये हमारे देश के शत्रु हमारे सामने खड़े हैं। इन्होने हमारे पके हुए खेत रौंद डाले हैं, अन्न की राशियाँ जला डाली है, हमारे घर जला दिए है, स्त्रियों को अपमानित और बच्चों को क़त्ल किया है। देखो, ये गुनहगार हमारे सामने हैं, हमारे हाथ में तलवार है, सावधान रहो, इनमें से एक भी बचकर भागने न पाए। आज हम बकरों की भाँति इनका बध करेंगे।"

समस्त सैन्य एक गंभीर नाद से गूँज उठी। युवक ने तलवार ऊँची की, फिर सन्नाटा हो गया। युवक ने गरज कर कहा—"वीरो, वे बहुत अधिक हैं, और हम बहुत कम, परंतु हम राठौर बाघ हैं, बाघ बकरियों के झुंड से भय नहीं खाते। देखो, जोधपुर की प्राचीर पर वह राठोरों का झंडा फहरा रहा है, और उसके निकट हमारे महाराज मरुधर धराधीश हमारी प्रतीक्षा कर रहे हैं। अरे, मरु-देश में देखो, वह मुग़लों का झंडा फहरा रहा है! मैं प्रतिज्ञा करता हूँ, आज मैं उसे छीनकर राठौरों के झंडे के निचे डाल दूँगा। मैं आज महाराज

अजीतसिंह को मुग़लों का यह झंडा भेंट दूँगा। कौन मेरे साथ आगे बढ़ेगा, वह वीर अपनी तलवार नंगी कर ले।"

सहस्रों तलवारें झनझना उठीं। युवक ने कुछ क्षण सेना-नायकों को आदेश दिया, और फिर जोर से बिगुल बजा दिया। सैन्य वीर-दर्प से आगे बढ़ी, जुझाऊ बाजे बजने लगे। क्षण-भर बाद दोनों दल भिड़ गए। तोपें आग उगलने लगीं। बाण-परवाले काल-सर्प की भाँति सनसनाने लगे। तलवारें खटखटाने लगीं। घाव खा-खाकर योद्धा चीत्कार करके धरती पर गिरने लगे। अन्य वीर रण-मद में मत्त होकर उन्हें रौंदते हुए बढ़-बढ़कर काट करने लगे।

(३)

जुझारसिंह ने शत्रु के वाम पक्ष को भेदन कर दिया। वह अपने एक हज़ार दुर्धर्ष रणमत्त वीरों को लेकर मुग़ल-सैन्य को चीरता हुआ उस बहुमूल्य झंडे के निकट पहुँच गया। झंडा हाथी पर था, और उसकी रक्षा तीन हज़ार मुग़ल-वीर कर रहे थे। उनके बीच एक बड़े हाथी पर फ़ौलादी हौदे में मुज़फ्फ़रबेग बैठा सैन्य-संचालन कर रहा था। मृत्यु खुला खेल खेल रही थी, युवक बहुत आगे बढ़ गया। उसने एक ही छलाँग में महावत को मार गिराया। दूसरी उछाल में झंडा उसके हाथ में था। वह क़ीमती रेशम का था, उस पर मोतियों की झालर टंकी थी।

झंडे को एक बार नीचे गिरा और फिर उसे दाएँ-बाएं

घुमाकर, उसने ज़ोर से चिल्लाकर, वीर राठौरों को पुकारकर कहा—"मेरे वीर साथियो, लो, यह नया खिलौना तुमने जीत लिया।" वह विजय के उल्लास में खिल खिलाकर हँस पड़ा। इसके बाद उसने गरज कर कहा—"इसे मैं जोधपुर के दुर्ग में ले जाकर महाराज के चरण में डाल दूँगा।"

मुजफ्फ़रबेग क्रोध से थर-थर काँपने लगा। उसने चीत्कार करके कहा—इससे पहले ही तेरे टुकड़े कर दिए जाएँगे, और यह जोधपुर का क़िला तोपों से मिस्मार करके ढेर कर दिया जायगा।" उसने भीम-वेग से आक्रमण करने के लिए मुग़ल-वीरों को ललकारा। राठौर वीर अपने सेनापति से दूर रह गए थे। वह शत्रुओं से घिर गया था। क्षण-क्षण पर चारों ओर शत्रु बढ़ते जा रहे थे। वह अपने इने-गिने साथियों-सहित काल की भाँति युद्ध कर रहा था।

राठौर भी उसी स्थल पर जुटने लगे। वह स्थान लोथों से पट गया। राठौरों को शत्रुओं का भेदन करके अपने सेना-नायक के निकट जाना अनिवार्य था। प्रत्येक राठौर दो-दो तलवारें चला रहा था मुजफ्फ़रबेग सेना को उत्साहित कर रहा था। एक बार अवसर पाकर युवक ने मुजफ्फ़रबेग पर भाले का वार किया। मुजफ्फ़रबेग न सँभल सकने से हाथी पर से झूमकर गिर गया, और उसके साथ ही वीर युवक राठौर भी। दोनो शत्रु गुथ गए थे। युवक के शरीर पर अगणित घाव थे। उसकी मुट्ठी में मुग़लों का छीना हुआ झंडा था।

सेनापति के गिरते ही मुग़ल-सेना के पैर उखड़ गए। सुअव-सर पाते ही राठौर-वीरों ने उन्हें गाजर-मूली की भाँति काटना प्रारम्भ कर दिया। तलवारों की टक्कर से, गिरते हुए आदमियों की चीत्कार से, घोड़ों की उछल-कूद और हिनहिनाहट से, तोपों के गर्जन से वायु-मंडल गूँज उठा। प्रत्येक वीर अंधाधुंध लड़ रहा था। मुग़ल-सेना गाजर-मूली की भाँति भागती हुई कट रही थी। जुभारसिंह ने ज़मीन पर पड़े-पड़े चिल्लाकर कहा—"मारवाड़ की जय! रणबंका राठौरों की जय।"

एक बार वीर-दर्प से मुट्ठी-भर राजपूत फिर मेघ की भाँति उठे। वे सिमटकर अपने सरदार के चारों ओर इकट्ठे हो गए। गोंगूद का माहौरसिंह, जिसने प्रबल पराक्रम दिखा, किसी भी बाधा की परवा न कर, उसका साथ नहीं छोड़ा था, स्वयं अत्यन्त घायल होने पर भी, उसकी रक्षा कर रहा था।

राव भगवानदास हरावल में थे। उनके सामने का मैदान बिलकुल ख़ाली हो गया था। वह तीर की भाँति युवक सरदार के निकट आए। उन्होंने सरदार की पगड़ी को ज़रा उकसाकर उसका सिर अपने घुटने पर रक्खा, और रक्त से लथपथ उसके दोनों हाथ अपने दोनों हाथों में लेकर कहा—"वीर, तुम्हारी माता धन्य है, मारवाड़ को तुम पर गर्व है, परंतु इसी आयु में तुम इस वीर-गति को पहुँचे! अभी तो ब्याह की मेहँदी की लाली भी वैसी ही बनी हुई है।"

युवक सरदार के होठों पर मुस्कान आई। उसने कंपित स्वर से कहा—"इससे अच्छा और क्या हो सकता था ठकराँ।" इसके बाद उसने कष्ट से साँस लेकर कहा—"मैं मृत्यु के निकट हूँ, किंतु उनसे मत कहना।" उसने युद्ध करती हुई राठौरों की सेना की ओर दृष्टि फेरकर कहा—"युद्ध समाप्त होने तक मेरे शरीर को किसी गढ़े में छिपाकर आप लोग युद्ध कीजिए। मेरे वीरों को उत्साहित कीजिए। विजय हमारी होगी।" फिर उसने पास पड़े हुए मुग़ल-सेनापति की ओर देख-कर गंभीर स्वर में कहा—"इस गीदड़ को बाँध लो। इसे और इस झंडे को भी महाराज के सामने ले जा कर निवेदन करना कि इन्हें एक मरे हुए आदमी ने जीता है, जिसके वंश में बिस्तर पर मरने की अपेक्षा युद्ध-भूमि में मरने में ही प्रतिष्ठा समझी जाती है।' एक बार उसके सूखे मुख-मंडल पर भीनी मुस्किराहट दौड़ गई' और उसकी आँखें फैल गईं। उसकी आवाज क्षीण होने लगी। उसका सिर अब भी राव भगवानदास के घुटने पर था। चारो तरफ सैनिक चुपचाप खड़े थे। उपर आकाश में सूर्य तेज बखेर रहा था। घाटी में ताजी वायु झकझोरे ले रही थी। अब भी चारों तरफ़ घमासान युद्ध हो रहा था। यद्यपि मुग़ल-सैन्य के पैर उखड़ गए थे, उसका व्यूह बिगड़ चुका था, तथापि कुछ टुकड़ियाँ जहाँ-तहाँ लोहा ले रही थीं। तरवारों की झनझना हट और घायलों की चीत्कार कानों के पर्दे फाड़ रही थी।

राठौर वीर जय-जयकार से दिशाओं को कंपायमान कर रहे थे।

मुमूर्षु वीर का मुख एकाएक देदीप्यमान हो गया। वह अपनी कुहनी का सहारा लेकर बैठ गया। उसने पूरा ज़ोर लगाकर कहा—"जय, मारवाड़ की जय, राठौर वीरों की जय!"

मालूम होता था, वह इसी शब्द को अंतिम बार कहना चाहता है। वह कटे वृक्ष की भाँति भगवानदास की गोद में गिर पड़ा।

वीरों ने उसके कथनानुसार नाले में उसका शरीर छिपा दिया, और तलवारें खींच-खींचकर युद्ध करने लगे। इस समय उस जीते हुए झंडे के आस-पास युद्ध होने लगा। एक मुग़ल-सरदार ने वीर भगवानदास को द्वंद्व के लिए ललकारा। दोनो वीर अड़ गए, परंतु कुछ ही क्षण में मैदान खाली होने लगा। थोड़े से बचे हुए राठौर वीर राव भगवानदास के चारो ओर विजय की बधाई देने को एकत्र हो गए। उनके बीच में बंदी मुग़ल-सरदार सेनापति और वह बहुमूल्य झंडा था।

(५)

सूर्यास्त हो रहा था। राठौर वीर बंदियों को साथ लेकर धीरे-धीरे जोधपुर-दुर्ग में प्रविष्ट हो रहे थे। सबके बीच में चार योद्धाओं के कंधे पर युवक सेनापति जुझारसिंह की शांत देह थी। उसके चारो ओर वीरों ने नंगी तलवारें

का छत्र बनाया था, और उसके आगे-आगे बहुमूल्य विजित झंडा ले जाया जा रहा था।

(६)

जोधपुर-दुर्ग के बाहर दक्षिण-कूल पर, जहाँ लूनी-नदी अपने क्षीण कलेवर में क्रुद्धा सर्पिणी की भाँति चपेट खाती बह रही है, वीर जुझारसिंह की सफ़ेद पत्थर की छतरी है वहाँ वह वीर चिर निद्रा में सो रहा है। नगर के चरवाहों के लड़के वहाँ के वृक्षों की शीतल छाया में बैठकर लूनी के मोती-से जल की लहरों पर दृष्टि दिए अपने बाप दादों से सुनी हुई जुझारसिंह की वीर-गाथा अपनी साथिनी बालिकाओं को सुनाया करते हैं। और, जब वे कहते हैं कि वह वीर यहाँ सो रहा है, तो भोली बालाएँ कौतूहल और विस्मय से उस छतरी की श्वेत पत्थर की पटियों को निहारा करती हैं।

पूर्णाहुति

(१)

अत्यंत दयालु परमेश्वर के नाम पर जिसके असंख्य बर्बरों के घोड़ों की टापों ने निरंतर तीस वर्ष तक भारत को रौंद डाला था, जिसने सत्रह बार प्रबल आक्रमण करके पश्चिमोत्तर-भारत को तलवार और अग्नि की भेंट किया, जिसने नगर कोट के मंदिर विध्वंस कर सात सौ मन अशर्फ़ी, सात सौ मन सोने-चाँदी के बर्तन, सात सौ चालीस मन सोना, दो हज़ार मन चाँदी और बीस मन हीरे-मोती तथा जवाहरात लूटे थे, जो थानेश्वर के युद्ध में दो लाख क़ैदियों को गुलाम बनाकर ग़ज़नी ले गया था, जिसने मथुरा की अप्रतिम छ ठोस सोने की विशाल मूर्तियाँ अपहरण की थीं, और जिसके प्रताप से ग़ज़नी में हिंदू-गुलाम की दर ढाई रुपया हो गई थी, जिसने सोमनाथ का अति प्राचीन वह विशाल मंदिर, जो छप्पन खंभों पर आधारित था, और जिस में चालीस मन वज़नी सोने की जंजीर में भारी घंटा लटका रहता था, जिसमें चुंबक के सहारे पाँच गज ऊँची शिव-मूर्ति अधर खड़ी लक्षावधि दर्शकों को आश्चर्य-चकित करती थी, विध्वंस किया, और वहाँ से स्वर्ण और जवाहरात के अनगिनत ऊँट भरकर ले गया, जिसने गुजरात को श्मशान के

समान बना दिया था, जिसकी प्रचंड सेना के नामी-गरामी सिपाही अपने घोड़े की ज़ीनों को सोने और जवाहरात से भरकर और लौंडी-ग़ुलामों के झुंड को बागडोर से बाँधकर सदैव उद्ग्रीव होकर अपने घरों को लौटते रहे थे, जिसके साथ अरबी-भाषा और साहित्य एवं दर्शन का प्रकांड पंडित अलबरूनी आता रहा था, वह प्रबल प्रतापी सुलतान महमूद ग़ज़नवी उन समस्त लूटे हुए हीरों, मोतियों, ख़ज़ानों और सोने के ढेर को सम्मुख रखवाकर और उन्हें देख-देख कर फूट-फूटकर रोता हुआ इस असार संसार को छोड़ चला था, और उसके निर्बल वंशधर मध्य एशिया के अपने पड़ोसी ख़ूंख़ार देशों पर अधिकार बनाए रखने के योग्य न थे। गोर के पहाड़ी सरदार ज़ोरों पर थे। उन्हों ने ग़जनी के सरदारों को मिलाकर ग़ज़नी के विपुल ऐश्वर्य की लूट के लोभी उन्हीं ख़ूनी सिपाहियों की सैन्य संग्रह कर, जो महमूद की रकाब के साथ रहकर भारत का सर्वस्व अपहरण कर चुके थे, ग़ज़नी को तहस-नहस कर दिया। वह आठ लाख नर-नारियों से परिपूर्ण और असंख्य रत्नों से ठसाठस पटा हुआ नगर जलाकर ख़ाक-स्याह कर डाला गया था। नर-नारी घास-फूस की भाँति काट डाले गए थे, और एक लाख ख़ूबसूरत स्त्री-पुरुष और बच्चे कराहते हुए भेड़-बकरियों की भाँति हाँके और वहाँ से ले जाए जाकर दुनियाँ के बाजारों में मिट्टी-मोल बेच दिए गए थे। बड़ी-बड़ी नामी इमारतें जमींदोज कर दी गई थीं।

वहाँ की हज़ारों फूल-सी सुकुमारियों को दुखते हुए हृदय और आँसू-भरी आँखों से अपना सर्वनाश करनेवाले क्रूर हत्यारों की सेवा करनी पड़ी थी। सुंदर, वीर युवकों को जंजीरों से बंधकर और चाबुक की मार खाकर कठिन परिश्रम करना पड़ा था। इस प्रकार वह प्रतापी बादशाह का वैभवशाली नगर सात दिन तक धायँ-धायँ जला था।

(२)

उस समय भारत में सम्राट् हर्षवर्धन की सत्ता का अंत हो चुका था। उत्तरीय भारत का साम्राज्य टुकड़े-टुकड़े हो गया था। कुछ पुरानी और नवीन राजपूत-शक्तियों ने पश्चिम से चलकर उत्तर-पूर्वीय तथा मध्य भारत में छोटी-छोटी रियासतें क़ायम कर ली थीं, और वे पंजाब से दक्षिण तक और बंगाल से अरब-सागर तक के प्रदेश को अधिकृत कर चुकी थीं। परंतु इन सबको संगठित करनेवाली कोई शक्ति न थी। आए दिन इनके परस्पर संग्राम होते थे। पुराने साम्राज्यों की राजधानियाँ खँडहर हो चुकी थीं।

ऐसी दशा में भारत का नैतिक पतन होना स्वाभाविक ही था। बौद्धों ने ब्राह्मण-धर्म और उच्च जाति के विशेषाधिकारों को कुचल डाला था। इसके बदले में ब्राह्मणों ने नवीन जाति के नवीन शासकों की सहायता से फिर पुराने ब्राह्मण-धर्म को नए रूप में खड़ा किया था। वेद के 'रुद्र' देवता पुराण के 'शिव' बन गए थे। और अब हिंदू और बौद्ध दोनों प्रतिमा-पूजन तथा

कर्मकाँड के प्रपंच में फिर से फँस गए थे। कनिष्क के प्रयत्न से उत्तरीय प्राँतों में महायान-संप्रदाय को नीव जम गई थी, जिसमें बोधिसत्वों की पूजा तथा बौद्ध-मंदिरों का समस्त कर्मकांड हिंदू-मंदिरों के ढंग पर ढल गया था। प्रारंभ में जो बौद्ध-मत ने संस्कृत का स्थान छीनकर प्राकृत या पाली भाषा को दे दिया था, अब वह फिर संस्कृत को मिल गया था, और ब्राह्मणों की अब बन आई थी।

वैष्णव, ताँत्रिक और शैव मतों ने प्रबल रूप से संगठित होकर बौद्ध-मत को बल पूर्वक भारत से निकाल बाहर कर दिया था। कुछ उच्च श्रेणी के लोग उपनिषद् और दर्शनशास्त्रों का मनन करते थे। पर सर्व साधारण का धर्म-पथ अंधकारमय, अरक्षित अस्त-व्यस्त था। जिस वर्ण-भेद को नष्ट कर बौद्ध-धर्म ने शूद्रों और स्त्रियों को मानवीय अधिकार प्रदान किए थे, वह फिर और मजबूती से अद्य भित्ति पर क़ायम हो गया था। अब वर्णों के स्थान पर असंख्य जातियाँ बन गईं थीं। ब्राह्मणों के असाध्य अधिकार बढ़ गए थे। जनता को जाति-पाँति और ऊँच-नीच की दलदल ने गले तक फाँस लिया था। असंख्य भयानक देवी-देवता, भूत-प्रेत, राक्षस, जप-तप यज्ञ-हवन, पूजा-पाठ, दान, मंत्र-तंत्र और जटिल कर्मकांड के जालों में अभागा धर्म फँसकर फाँसी पा गया था। दुर्गा की मूर्तियों पर मनुष्य की बलि दी जाती थी, और जहाँ-तहाँ नर मुंडों की मालाएँ पहने कापालिक भयानक वेश में घूमा करते

थे। मद्य-माँस शाक्तों और कापालिकों का खुला आहार था। भैरवी-चक्रों के खुले खेल यत्र-तत्र होते थे, मंदिरों के असाध्य अधिकार थे, भारत की समस्त संपदा धीरे-धीरे मंदिरों में एकत्र हो चली थी। इस प्रकार उस समय भारत सैकड़ों उत्तर-दायित्व-शून्य छोटी-छोटी रियासतों, सैकड़ों मत-मतांतरों और अनगिनत सदाचार-हीन कुरीतियों और अंध-विश्वासों का घर था। राजनीतिक व्यवस्था छिन्न-भिन्न हो गई थी, प्रजा की जान-माल सलामत न थी। सभी राजा परस्पर लड़ते रहते थे। युद्ध में व्यस्त रहना मानो उनका धर्म था। ब्राह्मण अपने अधिकारों की रक्षा में इतने व्याकुल थे कि यदि वे वैश्यों और शूद्रों को वेद-पाठ करते देखते, तो तलवार लेकर उन पर टूट पड़ते थे, और उन्हें कचहरी में घसीट ले जाते थे, जहाँ उनकी जिह्वा काट ली जाती थी। ब्राह्मण सब प्रकार के राज-कर से मुक्त थे। हिंदू-बालाएँ सती हो जाती थीं। हिंदू समुद्र-यात्रा नहीं करते थे, किसी देश को नहीं जाते थे, किसी जाति पर श्रद्धा नहीं रखते थे। वे अपने को और अपनी जाति को सर्वश्रेष्ठ समझते थे। इस समय भारत में चार प्रधान हिंदू-शक्तियाँ थीं—एक दिल्ली और अजमेर के संयुक्तराज्य चौहानों की, दूसरी गहरवारों की क़न्नौज में, तीसरी सोलंकियों की गुजरात में और चौथी सीसोदियों की चित्तौर में। ये चारों राजवंश यद्यपि परस्पर संबंधी थे, पर एक दूसरे के कट्टर शत्रु थे। इस दुर्भाग्य के बीच भारत की करोड़ों निरीह

प्रजा सर्वथा ही अरक्षित थी, जिसे खाने के लिये क्रूर और भयंकर गोधों के झुंड पश्चिम के पहाड़ों में बैठे थे, और जब चाहे भारत को रौंदकर और रक्त की नदी बहाकर लौट जाते थे।

(३)

उनका असल नाम मुइज़ुद्दीन था। वह एक उग्र अभिलाषी दृढ़-प्रतिज्ञ युवक था। वह ग़ज़नी-विजेता अलाउद्दीन ग़ोरी का छोटा भाई था। ग़ज़नी की ईंट से ईंट बजाकर, उसे जलाकर राख बनाकर और एकदम ऊजड़ करके तथा उसकी अतुल संपदा लूटकर अलाउद्दीन ग़ोरी अधिक न जिया। उसका यह अल्पवयस्क वीर भाई, जो मुहम्मद ग़ोरी के नाम से प्रसिद्ध हुआ, ग़ज़नी के ख़ज़ाने की बदौलत पचास हज़ार उग्र तुर्कों को एकत्र कर, भारत के दुर्जय काफ़िरों को रौंदने को जहाद का झंडा उठाकर खड़ा हुआ, तब संसार के अधिकांश प्रदेशों से, जो इस्लाम की तलवार के अधीन थे, धर्म के जोश और लूट के लालच से असंख्य बर्बरों का लश्कर उसके झंडे के नीचे एकत्रित हो गया। भारत के रत्न और स्वर्ण एवं सुंदरियाँ उनके बाप दादों की परिचित थीं, और उनके अपहरण का सुयोग छोड़ना संभव न था,

उसने भारत की ओर भाग बाग उठाई। उसने सिंधु-नद पार कर, मुलतान पर धावा कर उस पर दख़ल किया, और फिर दक्षिण की ओर मुड़ कर अच्छा मज़बूत किला भी क़ाबू में कर लिया। इस बार वह यहीं से लौटा। दो वर्ष बाद वह फिर आया।

इस बार वह प्रबल वेग से अनहिलवाड़ा पट्टन के धनी नगर को ध्वंस करने के लिए मरुभूमि पार कर गुजरात पर जा धमका। वहाँ के बालक राजा को हाथी पर रखकर, वहाँ के राजपूतों ने प्रबल गजवाहिनी सेना ले इस योद्धा को इस बार भगा दिया। एक वर्ष बाद वह फिर आया। इस बार उसने पेशावर को छीनकर एक बर्ष वहाँ मुक़ाम किया, और समस्त पहाड़ी कट्टर नौमुस्लिम जातियों को मिला कर उसने सिंध के देवलगढ़ को विजय किया, और सिंध को लूट-पाटकर भस्म कर दिया, तथा हजारों ऊँट लूट के माल से भरकर ग़ज़नी लौट गया। तीन वर्ष बाद वह फिर आया, और लाहौर को घेर लिया। इस समय लाहौर महमूदग़ज़नवी के वंशधर के हाथ था। उसने लाहौर को फ़तेह किया, और स्यालकोट का मज़बूत क़िला भी छीन लिया। महमूद का अंतिम वंशधर सुलतान ख़ुसरो मलिक क़ैद करके फ़िरोज़-कोह भेज दिया गया, और वहाँ व६ बेदर्दी से सपरिवार मार डाला गया। इस तरह महमूद का घराना, जिसने मध्य एशिया को घोड़ों की टापों से रौंद डाला था, दुनियाँ से उखाड़ फेका गया।

वह फिर ग़ज़नी लौट गया। इस बार उसने जहाद के झंडे के नीचे आने को समस्त मुस्लिम जगत् के मुल्लाओं को आमंत्रित किया। असंख्य बर्बर सैन्य देखते ही-देखते आ जुटी। इस बार वह एक लाख भयंकर सवारों को साथ ले साहस-पूर्वक लाहौर को अतिक्रमण कर भटिंडे तक वह आया, जहाँ प्रतापी चौहान-

राज पृथ्वीराज का सामंत दाहिमा चंडपुंडीर दुर्गाध्यक्ष था। वह तीन मास सुलतान से मोर्चा लेता रहा। अंत में पाँच सौ योद्धाओं के साथ घेरे को तोड़कर महाराज पृथ्वीराज की सेना में आ मिला, जो थानेश्वर की ओर सुलतान से लोहा लेने आ रहे थे। यहाँ तीस हज़ार चौहानों को ले प्रथम बार पृथ्वीराज ने सुलतान का सामना किया। कठिन मार में सुलतान घायल हुआ। उसे बचाने को तुर्क-सिपाहियों ने अपने शरीरों के ढेर लगा दिए। वे उस घायल और बेहोश नामी युवक सुलतान को मौत के मैदान से चालीस मील की कड़ी मंज़िल तक ले भागे, पर उसे पृथ्वीराज का बंदी होना ही पड़ा, जिसे पीछे चौहान-राज ने घमंड और उदारता एवं राजनीतिक असावधानी के कारण साधारण दंड लेकर छोड़ दिया। सुलतान ने फिर तो दिल्ली-पति पर लोक-लोक विख्यात छ आक्रमण किए। वह छहो बार बंदी हुआ, और नत-मस्तक हो दिल्ली-पति से क्षमा-याचना कर ग़ज़नी लौट गया।

(४)

राज्य के स्तंभ-स्वरूप चौंसठ सामंतों को कटाकर दिल्ली-पति वीर पृथ्वीराज पंगराज-नंदिनी संयोगिता को ब्याह लाए थे। इससे पृथ्वीराज की शक्ति छिन्न-भिन्न हो गई थी। वह सब कुछ भूलकर संयोगिता में रम गए थे। वह चौदह वर्ष की सुकुमार बालिका, जिसने उस पैंतीस वर्ष के प्रबल योद्धा के लिये पिता की दुर्धर्ष भर्त्सना सही, क़ैद भुगती

और अंत में साहस की चरम सीमा को उल्लंघन कर, वीर पति से स्वयंवर कर, उसके साथ घोड़े की पीठ पर आरूढ़ हो, कटार को मजबूत मुट्ठी से पकड़े, पिता की अजेय चतुरंगिनी को चीरती हुई, वीरों की लोथें रौंद कर, रक्त की नदी को पार कर जिसने मंज़िलें तय कीं, वह अलभ्य मूल्यावती पंगबाला पृथ्वीराज के प्राणों का हार थी। उसे आए तीन मास हो गए थे। इन तीन मास में किसी ने पृथ्वीराज को नहीं देखा था। दिल्ली में उदासी छा रही थी। वीर सामंत हाडुलीराय हम्मीर राजा से रूठकर घर बैठ रहा था। महलों के दरवाज़ों पर हाथी, घोड़े, सिपाही और प्यादों के पहरे न थे। मर्दाने लिबास में औरतें लाठी लिए हुए पहरे पर थीं। वीर योद्धा सरदार, जो राजा के संकेत पर जान देते थे, बिलकुल बेदिल हो रहे थे। उनमें कलह का राज्य था। कोई अपना-पराया पूछने वाला न था। सब मनमानी करते थे। रियासत-भर में कुप्रबंध फैल गया था। कुटिल धर्मायन (?) निरंतर राज्य के छिद्रों को सुलतान के पास भेज रहा था। भीतरी भेदों को शाह तक पहुँचानेवाले और भी बहुत-से गुप्तचर थे, जो शाह से मोटी तनख्वाह पाकर स्वामी से विश्वासघात कर रहे थे। राज्य-भर में छद्मवेश में शाह के दूत फैल रहे थे। सब कोई अपने-अपने स्वार्थ-साधन में तत्पर थे। चामुंडराय के पैरों में बेड़ियाँ पड़ी थीं। मंत्री कैमास मार डाला गया था। जिन वीरों के बल पर दिल्ली का छत्र टिका था, वे कन्नौज में कट मरे थे, जो बचकर आ गए

थे, वे अपनी-अपनी खिचड़ी अलग पका रहे थे। उस विजयिनी चौहान-चमू का अब कोई धीरधनी न था। इस समय दिल्ली में कोई कौटिल्य-सा प्रबल राजनीतिज्ञ होता, या पृथ्वीराज ही सावधान और तत्पर होकर समस्त राजों से संधि कर सिंधु-नद तक बढ़ जाते, और प्रतापी समुद्रगुप्त की भाँति भारत की सीमा को सुरक्षित कर देते, तो आज भारत को एक हज़ार वर्ष तक खून के आँसू न बहाने पड़ते।

(५)

पिछले आक्रमण के बाद मुहम्मद गोरी छ मास रोग-शय्या पर फ़िरोज़-कोह में पड़ा रहा। आरोग्य लाभ कर वह ग़ज़नी आया, और ज़ोर-शोर से सैन्य संग्रह करने लगा। पुराने सरदार क़ैद से छोड़ दिए गए। चारों ओर से मुसलमान फ़क़ीर दुआ देने आ पहुँचे। देखते-ही-देखते जहाद के जोश में भरे हुए तुर्क, अरब, अफ़ग़ान, मुग़ल आदि बर्बरों का भयंकर दल एकत्र हो गया। इनमें से एक लाख बीस हज़ार चुने हुए सैनिक लेकर उसने उनसे क़ुरान की शपथें लीं, और खूब चाक-चौबंध होकर सिंधु-नद पार कर पहाड़ों के नीचे सतलज पार करता हुआ दिल्ली की ओर बढ़ा।

दिल्ली में यह समाचार आग की भाँति फैल गया। नागरिक भयभीत हो हो-कर दिल्ली छोड़-छोड़कर भागने लगे। किसी की जान-माल की सलामती नज़र न आती थी। इस बार किसी को रक्षा की आशा न थी। बाज़ार के गण्य-मान्य

महाजन विकल हो गए। जो श्रीमंत कभी घर के बाहर पैर न धरते थे, वे एकत्र हो नंगे पैर नंगे सिर श्रीमंत साह नगरसेठ के पास पहुँचे, और कहा—"राजा तो रनिवासों में रमा बैठा है, अब हमारी रक्षा कौन करेगा ?"

श्रीमंत साह ने कहा—"मुझे भी यही चिंता है। राजा का मुँह तो उड़ता पंछी भी नहीं देख सकता, आठो पहर द्वार पर लठैत दासियों का पहरा रहता है, राजकुमार रेनसी भी छ मास से राजा का मुख देखने को तरस रहे हैं, प्रजा का विनास सिर पर है, केवल गुरुराम पुरोहित राजा को पूजन कराने नित्य जाते हैं, उन्हें हमारी भी पीर है, उनके पास चलना चाहिए।"

गुरुराम पुरोहित के निकट पहुँचकर साहूकारों ने कहा—"आपने भी तो सुना ही होगा, गजनी का शाह दिल्ली पर चढ़ा चला आ रहा है जिसके आतंक से पंजाब में भूकंप सा आ रहा है, प्रजा अनाज की भाँति पिस रही है, पुंडारों ने लाहौर लूट लिया। चामुंडराय के पैरों में बेड़ी पड़ी हैं, जिससे दाहिमा वीर बेदिल हुए बैठे हैं। हम्मीर राव अपने घर में बैठे रहे। लोहाना आजानुबाहु अजमेर में हैं, बाक़ी सब नए-नए लड़के हैं। यह सब संयोगिता के चरणों का प्रताप है, इसलिए हम लोग आए हैं आपकी आज्ञा हो, तो घर-द्वार, कार-बार छोड़ जंगल को चले जायँ, या आप जैसा कहें।"

पुरोहित ने महाजनों का रोना सुनकर कहा—"सिवा कवि चंद के अन्य से कुछ होना नहीं है, वह सभाचतुर, राजा

के मुँहलगे हैं, वह औंधा-सीधा सब कुछ कर सकते हैं। सब बीज उन्हीं के बोए भी हैं। चलो, वहीं चलें।"

गुरुराम अपने सुखपाल पर सवार हुए। श्रीमंत साह पीनस पर बैठे, और सब बनिए-महाजन अपने-अपने हाथी-घोड़े, पालकी-चंडोल आदि में बैठ कवि चंद के घर पहुँचे, और उन्हें लेकर राजद्वार की ओर चले। इनके पीछे बहुत से लोगों की भीड़ लग चली। राजद्वार पर देखा, न वहाँ शूर-वीर सिपाहियों के पहरे हैं, न मतवाले हाथी ही झूमते हैं, पुरुष-वेशधारी स्त्रियाँ हाथ में लाठी लिए हाजिर हैं। इनके पहुँचते ही वे मार-मार करती हुई दौड़ पड़ीं। बनिए-महाजन जान लेकर भागे, पर गुरुराम और कवि बढ़ते ही गए। इनके सिर पर सैकड़ों ही लाठियाँ छा गईं। जब प्रथम पौर तक पहुँचते, तो राजमहिषी इच्छनी ने दासियों को रोककर कवि चंद को भीतर बुला भेजा, और आने का कारण पूछा। कवि चंद ने एक कागज देकर कहा—"इस पुर्जे को राजा तक पहुँचा दीजिए।" उसमें लिखा था—

"कग्गर अप्पह राज कर, मुष जंपह इह बत्त
गोरी रत्तौ तुश्र धरनि, तू गोरी-रस-रत्त।"

दासी ने डरते डरते पुर्जा राजा को दिया। राजा ने पुर्जा पढ़ा। वह क्रोध से थरथर काँपने लगे। उन्होंने पुर्जा फाड़कर फेंक दिया, और कहा—"अब भाट और ब्राह्मण राज्य की रक्षा करेंगे?"

दोनों विद्वान निराश होकर घर लौट आए।

(६)

चौहानराज के परमहितैषी और अप्रतिम विद्वान् एवं वीरवर राजर्षि चित्तौर-अधिपति समरसिंह ने दिल्ली के समाचार सुने, और होनहार को भाँप लिया। उन्होंने राज-कुमार रत्नसिंह को चित्तौर की गद्दी सौंपी, और, दिल्ली के प्रस्थान की तैयारी करने लगे। उन्होंने आबू बूँदी, जालौर गौरगढ़, धार, उज्जैन, रणथंभौर आदि के राजों के नाम बुलाने के परवाने भेजे, और दरबार कर कुँवर का राज्या-भिषेक कर राजमहिषी पृथा-सहित वह दिल्ली को चले। पहले दिन दस कोस पर पड़ाव डाला, वहाँ तक साठ हज़ार सवार और सरदार रायजी को पहुँचाने आए। यहाँ से उन्होंने एक हज़ार चुने हुए सवार, पचास हाथी और कुछ खास सरदार साथ ले शेष सभी को वापस भेज दिया। ये राजपूत और हाथी साधारण न थे। ये वे योद्धा थे, जिन्होंने पीछे हटना जाना ही न था, ये हाथी बात-की-बात में क़िलों को ढा सकते थे। उन पर जरतारी झूलें पड़ी थीं, और जड़ाऊ हौदे और अंबारी कसी थी, जिन पर रंग बिरंगी ध्वजाएँ फहरा रही थीं। घोड़े क्या थे, आग के अंगारे थे। नवीन वयस्का वेश्या के समान थिरकते हुए पत्थर को भी खूँद से खड्डा कर सकते थे वे सिर से पैर तक रत्न-जटित, सुंदर, सुनहरी पाखरों से सजे थे। उनकी पीठ पर दीर्घकाय यवन उमड़ते समुद्र की लहरों की भाँति दिखाई पड़ते थे।

रावलजी कूच-दर-कूच करते दिल्ली आ पहुँचे, और उन्होंने निगमबोध पर डेरा डाल दिया। उनकी अवाई सुनकर संयोगिता का प्रधान दस कोस आगे बढ़ कर पेशवाई को गया, और पाँच कोस से सब सामंतों ने पेशवाई की। पृथाकुमारी पट्ट महारानी इच्छनी के रंगमहल में रहने लगी। रावलजी निगमबोध पर ठहरे थे। उनके डेरे पड़ते ही भारबरदाई और चाँदी की जिस भेजी गई। इसके बाद रनिवास की दासियाँ कलेऊ लेकर गईं। पचीस झाब पूरी, साठ झाब मिठाई, बत्तीस झाब पापड़, अचार, पान, मसाला तथा भाँति-भाँति का बना हुआ मांस और फल आदि थे। वे ख़ूब सजी-धजी और नवयौवना सुंदरियाँ थीं। दूर ही से उन्होंने डोली से उतरकर सब सामग्री अपने हाथों में ले ली, और उस सिंहासन पर बैठे समरसिंह के सम्मुख जा, सामग्री आगे रख, नीची नज़र करके खड़ी हो गईं। उनकी मुखिया ने हाथ बाँधकर कहा—"श्रीमानों की अवाई सुनकर संयोगिता को बड़ी प्रसन्नता हुई है। उन्होंने हम लोगों को यथोचित भेंट-भलाई निवेदन करने भेजा है।" रावलजी ने संयोगिता को बहुत-बहुत आशीर्वाद दिए, और दासियों को बैठने की आज्ञा दी।

ये सभी दासियाँ रावलजी की सुपरिचिता थीं। रावलजी ने उनसे हँसकर कहा "भला, यह शिष्टाचार तो हुआ, अब असल समाचार तो कहो, क्या हाल है ?" दासियों ने उदास

होकर कहा—"महाराज, क्या कहूँ, चौहानपति तो संयोगिता के चेरे हो रहे हैं। रात-दिन वहीं रहते हैं, राज-काज की कौन कहे, उन्हें अपने बेगाने की भी खबर नहीं है। हादुली हम्मीर रूठे बैठे हैं, धीर पुंडीर को सौदागरों ने मार डाला, मोहाराय गंगा-तीर पर समाप्त हुए, चामुंडराय के बेड़ी डाल दी गई हैं। कैमास को राजा ने खुद मार डाला, रहे-सहे शूर कन्नौज में कट मरे। जिन्हें दिल्ली की हद में क़दम रखना दुस्तर था, जो राज्य के ताबेदार थे, वे स्वतंत्र हो गए। जो अब तक दंड भरते थे, अब दंड लेने का इरादा रखते हैं।"

यह सुनकर रावलजी माथे पर हाथ धरकर बैठ गए। कुछ देर बाद उन्होंने दासियों को पान दिए, और संयोगिता के लिये कपूर देकर विदा किया। इसका अर्थ यह चेतावनी थी कि कपूर की भाँति ही वह यौवन भी अस्थिर है, जिसमें तूने राजा को फाँस रक्खा है।

दूसरे दिन जैतराव की पहुनाई हुई। उसने आटा, मैदा, बेसन, घी, चीनी, तरकारी, दही, दूध, आम पापड़, मसाला आदि पाँच सौ जिंस उनके डेरों में पहुँचाकर स्वयं जाकर सब सत्कार किया। उसके बाद चामुंडराय दाहिमा ने, फिर बलभद्र राय कछवाहा और रामदेवराय खीची ने, फिर जामराय यादव सिंह प्रमार आदि सामंतों ने बारी-बारी से रावलजी का सत्कार किया। सबके बाद राजकुमार रेणु की तरफ़ से गोट रची

गई, जिसमें सब सरदार भी सम्मिलित हुए। अंत में दरबार हुआ। कुछ देर गुरुराम पुरोहित ने अपने पोथी-पुराण की चर्चा की। फिर कवि चंद ने अपने कवित्त पढ़कर रावलजी की खूब प्रशंसा की फिर भाँति-भाँति को बातचीत के बाद दर-बार बरखास्त हुआ, और सब लोग अपने-अपने घर रवाना हुए। पीछे से दो हाथी, एक सजा हुआ घोड़ा, एक तलवार और ज़रतारी सिरोपाव रावलजी ने चंद कवि के पास तथा एक हथिनी एक मोतियों की माला और अँगूठी अटाले (रसोई) के अध्यक्ष वनवीर पड़िहार के पास भेजा। फिर सूर्य-संक्रांति के अवसर पर एक लाख नक़द जेवर और कासको ग्राम का पट्टा गुरुराम पुरोहित को दिया। इसके सिवा वह प्रतिदिन डेढ़ सौ मुहर दिल्ली के चारणों और ब्राह्मणों को दान देते रहे। रोज़ सरदारों का जमाव जुड़ता। सदावर्त जारी रहता। इस प्रकार दिन-पर-दिन बीत चले। पृथ्वीराज को अभी ख़बर भी न थी।

राजसभा मंडप, जो वर्षों से सूना पड़ा था, उसके भाग्य खुल गए। जहाँ-तहाँ सब साज दुरुस्त होने लगे। सैकड़ों नक़ीब और हरकारे दरबार की सूचना देने को दौड़े-दौड़े फिरने लगे। जहाँ-तहाँ हाथी-घोड़े, फ़ौज और शूर-सामंत सज-धजकर सायंकाल के समय राजद्वार पर हाज़िर हो गए। दिल्ली में आज फिर पुरानी रौनक थी। पृथ्वीराज मूछें चढ़ाए गद्दी पर आ बैठे। शूर-सामंत यथा-स्थान आ जमे।

मधुशाह प्रधान ने सबसे प्रथम रावलजी के आने की सूचना दी, और कहा—"उन्हें आए बीस दिन हो चुके हैं।" यह सुनते ही राजा शोक सागर में डूब गए। बोले -"हाय! मैं बड़ा अभागा हूँ। हमारे पूज्य रावलजी बीस दिन से आए हैं, और मुझे ख़बर भी नहीं, कैसी लज्जा की बात है! ख़ैर, वह योगिराज हैं, मुझे क्षमा करेंगे। अब ऐसा उपाय करना चाहिए कि वह चित्तौर चले जायँ, क्योंकि समय बड़ा टेढ़ा आया है।"

इसके बाद राजा दरबार से उठकर दसों रानियों के पास गए और मिले। दूसरे दिन प्रातःकृत्य करके राजा ने कुसूमी पाग सिर पर बाँधी। सुगंध सेवन की और दो लाख मूल्य के कुँडल की जोड़ी कानों में पहन, बागा-पटका आदि से लेस हो सामंतों-सहित रावलजी को भेंट को चले।

नए-पुराने सब सामंत घोड़ों पर सवार राजा को कुंडलाकार घेरे चले जाते थे। सब के पीछे सेना थी। उधर रावलजी ने राजा की अवाई सुनी, तो घोड़े पर सवार हो आगे बढ़ आए। आधोआध रास्ते में दोनों संबंधी परस्पर मिले-भेंटे। दोनों ने परस्पर भुज भरकर भेंट की। इसके बाद सेना-सहित रावलजी और राजा निगमबोध पर आए, और यथा-स्थान आसन पर बैठ लौकिक शिष्टाचार तथा कुशल-प्रश्न पूछे। फिर दिल खोलकर अपनी-अपनी बीती कहीं सुनी। जब पृथ्वीराज क़नौज की बीती सुना चुके, तब रावलजी ने

कहा—"चलो, किया सो अच्छा किया, पर स्मरण रक्खो, स्त्रियों के भोग-विलास से कोई संतुष्ट नहीं हुआ। सोम-वंशी शशिबंध के महलों में दस हज़ार स्त्रियाँ और ग्यारह हज़ार पुत्र थे, परंतु अंत समय तक भी वह उनसे संतुष्ट नहीं हुआ।"

इसके बाद नए-पुराने सामंतों से भेंट होने लगी। सब एक एक करके रावलजी से जुहार करने लगे। कवि चंद उनका नाम, गुण और विरद बखान करने लगे। फिर इधर-उधर की हँसी-दिल्लगी की बातें होने लगीं। इसके बाद दोनों सेना-सहित महलों में आए। संयोगिता का ख़ास कमरा सजाया गया, और उसमें क़न्नौज के दहेज का सब सामान सजाया गया। दोनों वीर मित्र उच्चासन पर बैठे। इधर-उधर सामंत-गण बैठे। पहले इत्र-पान और टीका हुआ, पीछे भोजन का बुलावा आया। भोजन कर सब सरदारों सहित रावलजी डेरे को पधारे। दूसरे दिन पृथ्वीराज ने रावलजी की बिदाई का प्रबंध किया। क़न्नौज से आए हुए हाथी-घोड़े, रत्न नक़द वस्तु बहुत-से थालों में लगा, बिदाई का सामान लगाया, और सब सामंतों को साथ ले पृथ्वीराज रावलजी के डेरे पर पहुँचे। साधारण रीति-रस्म हो चुकने पर कवि चंद ने कहा—"महाराज, हमारे ऊपर समय पड़ा है, इसलिए हम सादर आप को बिदा करते हैं। क्योंकि उधर भी आपके बिना राजकाज में हानि हो रही है। कृपा कर चित्तौर पधारिए, और सदा हम पर कृपा-दृष्टि रखिए।

यह सुन रावलजी ने क्रोध में भरकर कहा—"वाह! क्या कहते हैं! आपने हमारी ख़ूब मर्यादा रक्खी। ठीक है, ऐसे सुअवसर पर [illegible] दानग्राही सुगमता से तुम्हें कहाँ मिलेंगे? अच्छा भाई, हमें दान देकर, तुम शूर-वीर बनकर युद्ध करो, और हम कायरों की भाँति अपने घर भाग जायँ। सुनो, धर्म जाय, तो धन किस काम का? अरे हमारा-तुम्हारा संबंध प्राण और शरीर का है, क्या हम ऐसे हैं कि इस समय घर पर बैठेंगे?" यह सुनकर कवि चंद ने कहा—मरज़ी हुई सो ठीक है, आपका बल प्रताप किससे छिपा है। पर हमारी प्रार्थना केवल यही है कि इधर बहुत-से मुकुटबंध राजा हैं, और सामंत भी हैं। इधर की चिंता न कीजिए।" तब रावलजी ने क्रोध में भरकर कहा—"तुम लोगों ने जो करतूत कर रक्खी है, उसका फल तो भोगना ही पड़ेगा, तब मालूम होगा। आज हमें हठ करके बिदा करते हो, जिससे लोग कहें कि मौक़ा देख खिसक गए। इस दरबार में अब ऐसे ही लोग रह गए हैं?"

यह सुन पृथ्वीराज ने रावलजी के पैर पकड़ लिए, और कहा—"अब जैसी आज्ञा होगी, वही करूँगा।" रावलजी ने कहा—"तुमने कैमास को क्यों मारा? और बादशाह को पकड़-पकड़कर क्यों छुपा दिया? सब सामंत क्यों कटा डाले? चामुंडराय के पैरों में बेड़ियाँ क्यों डलवा दीं। ..

पृथ्वीराज ने कहा—"उसने ऐरावत के समान हाथी को

मार डाला।" रावलजी ने कहा—"हाथी लाख प्यारा था, पर चामुंडराय से अधिक नहीं। वह तुम्हारे राज्य की ढाल है, उसके समान रणबंका वीर और कौन है ?"

यह सुन पृथ्वीराज ने गुरुराम पुरोहित को एक कुसुमानी पाग और अपनी खास तलवार दे चामुंडराय के पास भेजने की इच्छा प्रकट की पर रावलजी ने कहा—"नहीं, इस समय आप स्वयं उनके घर जाइए।" तब सब लोग चामुंडराय के घर चले। पृथ्वीराज संकोच-वश चामुंडराय के सम्मुख न जा सके। उन्होंने कवि चंद और सब सामंतों को भेजकर कहा—"जाओ, उनकी बेड़ी उतरवा दो।"

वह देव के समान वीर चुपचाप बैठे थे। उन्होंने आँख उठा कर उनकी ओर देखा। कवि चंद ने आशीर्वाद देकर कहा—"महाराज की आज्ञा है कि आप बेड़ी उतार डालिए।" चामुंडराय ने लाल अंगारे के समान आँखों से देखकर कहा—"राजा का मुझसे अब क्या प्रयोजन है ?"

"आप राज्य की ढाल हैं, राजा पर टेढ़ा अवसर आया है, क्रोध को त्याग बेड़ी उतारिए। महाराज सामंतों-सहित द्वार पर खड़े हैं।"

"इसकी क्या अवश्यकता थी। सब सामंत शूरमा तो हैं, और तुम चतुर सलाहकार हो फिर एक चामुंड न हुआ, तो न सही।"

"रावजी इस बार धन मान का बँटवारा नहीं है, शरीर का

मांस बाँटा जानेवाला है, मान छोड़िए और राजा की दी हुई पाग और तलवार बाँधिए। कुसूमती पाग या तो राजसम्मान के अवसर पर या विवाह के अवसर पर बाँधी जाती है। आप महावीर पुरुष हैं, आपका नाम सुनकर सामंतों के छक्के छूट जाते हैं। कृपाकर वीर-वेश धारण कीजिए, और अपने पूज्य के पूज्य रावलजी से भुज भरकर भेंट कीजिए।"

चामुंडराय कुछ बोल न पाए थे कि पृथ्वीराज ने वहाँ पहुँच अपनी कमर से तलवार खोलकर चामुंडराय को दी। यह देख वह खड़े होगए, और बोले—"जब स्वामी की कृपा है, तब क्या कहूँ। यह शरीर तो स्वामी ही के लिए है।"

इसके बाद उन्होंने बेड़ियाँ उतार डालीं, और राजा को प्रणाम किया। राजा ने उन्हें जागीर और सिरोपाव दे, समझा-बुझाकर संतुष्ट किया। इसके बाद उन्होंने डेढ़ हज़ार घोड़े, सोलह हाथी, दस मोतियों की माला और बहुत-से रेशमी वस्त्र चामुंडराय को दिए। कवि चंद ने विरद पढ़ी और चामुंड ने उन्हें बहुत कुछ दान दिया। इसके बाद वह वीर-वेश धारण कर, राजा के घोड़े पर सवार हो रावलजी से मिलने निगम-बोध की ओर चले।

(७)

युद्ध-मंत्रणा की सभा बैठी। पृथ्वीराज ने दूत का संदेश सुनाया कि शहाबुद्दीन मुहम्मद गोरी लाहौर से दस कोस पर

है। एक सप्ताह में वह पानीपत में आ धमकेगा। जो करना-धरना है, विचार लो। चामुंडराय ने कहा—"विचारना क्या है, जब तक हाथ में तलवार है, हम लड़ेंगे।"

जामराय "चामुंडराय, तुम्हारे पैर में लोहा लगा तो लगा, बुद्धि में भी लग गया। अरे, शाह की सेना आँधी-तूफ़ान है, और अपनी तरफ़ सौ में छ-सात सामंत बचे हैं।"

चामुंडराय—"अच्छा भाई, हमारी बुद्धि में लोहा लगा, अब फिर बेड़ियाँ डलवा दो। जब शत्रु सिर पर आ जाय, तब आधी रात को उठकर घर भागना।"

बलभद्रराय—"वाह, जहाँ कूरम-वंशी हैं, वहाँ भागना कैसा? शत्रु सबल हैं, तो क्या हुआ। हम भी दिल्ली की ढाल हैं।"

रामराय बड़गूजर—"भाई, मौक़ा देखकर काम करो, मेरी राय में शत्रु पर रात को छापा मारा जाय।"

वीरभद्रराय—"अरे गँवार गूजर, अपनी राय अपने घर रख। हम तो बीच मैदान लोहा लेंगे।"

रामराय—"आप के पराक्रम में संदेह किसे है, परंतु मौका भी तो देखिए। संयोगिता के स्वागत में चौंसठ सामंत काम आ चुके हैं।"

चामुंडराय—अरे, तुम सब डरपोक हो। क़न्नौज से चोर की भाँति भाग आए। ऐसे ही राजा, जो लुगाई के पीछे भाग खड़े हुए! पंग की चमक में फँस अब सबको छल की

सूझी।" इस पर सबने हँसकर कहा—"चामुंडराय, तुम बड़े मुँहफट हो गए। स्वामी का भी लिहाज नहीं।"

अंत में रावलजी ने यह निश्चय किया कि युद्ध किया जाय। राजकुमार रेनसी को दिल्ली गढ़ पर छोड़ा जाय, और रावलजी के भतीजे वीरसिंहराय अपने सात सौ राजपूतों-सहित उनकी रक्षा करें। उनके सब सामंत भी वहीं रहें। उन्हें एक-एक हाथी और एक-एक घोड़ा दिया गया। दरबार बरख़ास्त हुआ।

(८)

रात-भर सेना की तैयारियों की धूम रही। राजा संयोगिता के महलों में सो रहे थे, पर आज नींद कहाँ? ऊषा का उदय हुआ, और जंगी बाजों की ध्वनि से दिशाएँ गड़बड़ा उठीं। घोड़ों की हिनहिनाहट से आकाश गूँज उठा। राजा ने शय्या त्यागी, नित्य कर्म किए, और युद्ध-सज्जा से सजने लगे। हीरे मोती, रत्न और स्वर्ण ब्राह्मणों को दान दिए जाने लगे। राजा ने दुहरी तलवार बाँधी, और अपना प्रसिद्ध धनुष और तरकश कसा। जब वह युद्ध वेश में सजकर रानी संयोगिता के पास मिलने गए, तो उन्हें देखकर संयोगिता सकते की हालत में हो गई। दोनों के मुँह से बोल न निकला। बहार बादल की भाँति निशाने बज रहे थे। घोड़े हिनहिना रहे थे। हाथी चीत्कार कर रहे थे। सिपाही चिल्ला रहे थे। सुनकर दिल दहलता था। राजा अधिक मोह न कर, एक बूँद आँसू और एक लंबी साँस छोड़ जब चले, तो वह कटे वृक्ष की भाँति

धरती पर गिर गई। दासियों ने उपचार किए, पर उसकी मूर्च्छा न खुली। राजा के पास अपनी उस परम प्यारी कोमलांगी पंगपुत्री के लिए समय न था, जिस के लिए वह खवास बनकर क़न्नौजराज के दरबार में गए थे, और प्राण तथा प्रतिष्ठा की बाजी लगा दी थी।

राजा ने इस समय सेना की हाज़री ली। उसमें तिरासी हज़ार सैनिक थे, जिनमें चुने हुए वीर पचीस हज़ार थे। बीस हज़ार योद्धा दुहरी तलवार बाँधते थे। बारह हज़ार जागीरदार सरदारों के सेवक और पाँच सौ राजपूत सरदार थ। दस सेनापति थे। इस सेना ने तत्काल कूँच कर दिया।

शाह की सेना में नौ लाख बर्बर योद्धा थे इनमें चार लाख उसने पीछे छोड़े थे। चार लाख के दो टुकड़े कर पृथक्-पृथक् छावनी डाली गई थी। कमालखाँ सरदार को एक लाख सैन्य तथा पत्र देकर राजा के पास भेजा गया। वह सतलज पार करके निर्भय पृथ्वीराज के पास चला आया। पत्र बहाना था, मुख्य काम राजा की सेना भेद लेना था। पत्र में आधा पंजाब और शाही दरबार में कुँवर रेनसी की हाजिरी माँगी गई थी, जिसे राजा ने अस्वीकार कर लौटा दिया, और उसने पाँच दिन में ही शाह को सब भेद बता दिए। दूसरे ही सप्ताह में शत्रु की प्रबल सेनाए सम्मुख थीं।

(६)

श्रावण की अमावास्या और शनिवार का दिन था। रात-भर

व्यूह-रचना और युद्ध-मंत्रणा होती रही। पानी गिर रहा था, और भयानक अँधेरी थी। आँधी गरज-गरजकर चल रही थी। समस्त सैन्य चार भागों में बाँट दी गई। तैंतीस हजार सैन्य ले रावलजी बाएँ बाजू पर चले गए। यह देखकर राजा घोड़ा दौड़ाकर उनके पास आए, और विनीत भाव से कहा—"आप कृपा कर पीठ की सेना में जाइए, और दोनों सेना की गति-विधि देखते रहिए।" यह सुन रावलजी ने हँसकर कहा—"यह बड़ा भारी दूभर भार हमें दिया।" फिर स्नेह से राजा की ओर देखकर कहा—"यह समय स्नेह और आदर का नहीं, अब हम संबंधी नहीं, सिपाही हैं।" राजा ने तब जामराय यादव, बलभद्रराय कूरम, पावसपुंडीर और मदनसिंह, इन चार प्रबल सामंतों को उनकी सहायता के लिए भेज दिया। इक्कीस हजार सेना का सिरमौर जैतराव प्रमार दाहनी बाजू पर आ डटा। आरज राज राठौर, अचलेश खीची धीरराय प्रमार, चंद्रसेन बड़गूजर, विजयराज बघेला आदि नौ सरदार उसकी सहायता को नियुक्त हुए। उन्नीस हजार सेना ले 'वीर चामुंडराय छायल में जमा। भारतराय और तियाराय परिहर, जंगलीराव दाहिमा, ठंठराराय परिहार आदि पाँच सरदार उसकी सहायता करते थे। शेष दस हजार सेना ले पृथ्वीराज सेना की पीठ पर स्वरक्षित थे। गुरुराम पुरोहित, चाँचराय गहलौत, पंचादनराय आदि दस सरदार उनके साथ थे। इस प्रकार व्यूह रचकर, समरसिंह को साथ

लेकर एक बार राजा ने घूम-फिरकर समस्त सेना का निरीक्षण किया, फिर मध्य में आए, तब पृथ्वीराज ने एक बहुमूल्य मोतियों की माला रावलजी के गले में पहनाई, और सब अपने-अपने स्थान पर आ डटे।

शाह की सेना में एक लाख सवार, नौ लाख पैदल और दस हज़ार हाथी थे। दाहनी बाज़ू पर सरदार तातार खाँ दो लाख सिपाही और दो हज़ार हाथी तथा पाँच सौ सरदारों सहित था। बाईं बाज़ू पर सरदार ख़ुरासानखाँ दो लाख सिपाही, दो हज़ार हाथी और तीन सौ सरदारों-सहित था। तीन हज़ार हाथी और दो लाख सेना ले एक वीर सरदार अनेक सरदारों-सहित हरावल में था। शेष नायकों-सहित शाह सेना के पीछे के भाग में सुरक्षित था। दो घड़ी दिन चढ़े मुठभेड़ हुई। देखते-देखते धूल, गर्द और लोहे से मीलों का मैदान भर गया। चीत्कार, हाहाकार, मार-काट की भयानक पुकार पड़ी। कठिन मार होने लगी। ग़ाज़ी होने की धुन में बर्बर योद्धा दाँत पीस-पीसकर उमड़े आते थे, और इधर राजपूत जान पर खेल रहे थे। दोपहर के युद्ध में वीरवर चामुंडराय घायल हुआ। देवराय बग्गरी, सालुखाराय भाटी, राना माल्लहनसिंह परिहान आदि छ सौ कूरंभ और टाँक चंदेलों-सहित जैतराव प्रमार भी घायल हुआ। शत्रु के पच्चीस हज़ार सरदार और सिपाही काट डाले गए।

संध्या-समय दोनों सैन्य फिरीं। रावलजी के सभापतित्व

में समर-सभा जुड़ी, और आगामी दिन के युद्ध का कार्य-क्रम बनाया जाने लगा। इसके बाद सबने विश्राम किया। प्रातःकाल रावलजी ने गरुड़-व्यूह रचा। एक पक्ष पर बलभद्रराय, दूसरे पर जामराय यादव, चोंच पर पुंडीर, पाँव और पिंड पर समरसिंह, पूँछ पर मदनसिंह और कुछ सेना बीच देकर पीछे पृथ्वीराज स्थित हुए।

यवन-दल ने चंद्र व्यूह रचा। आधे भाग के नेता ख़ुरासान-खाँ और आधे के रुस्तमख़ाँ, हुए। हरावल में मारूफ़ख़ाँ गक्खरों की सेना-सहित था।

युद्ध के प्रारंभ होने पर पुंडीर ने कहा—"महाराज, क्या आज्ञा है? स्वामी द्रोही हम्मीर का सिर काट लाऊँ या शाह को बाँध लाऊँ?" तो राजा ने कहा—"हम्मीर का सिर काट लाओ, तो क्या बात है।" यह सुन वीर पुंडीर अपनी सेना ले भयानक वेग से शत्रु-सैन्य में घुस गया। सैनिकों की लाशों के ढेर को रौंदता हुआ वह हम्मीर तक पहुँच गया, और उसका सिर काट लाकर राजा के सम्मुख रक्खा। यह देख राजा ने प्रसन्न होकर शाबाशी दी और कहा—"अब चार-चार तलवार बाँध कर शाह को बाँध लाओ।" हम्मीर का सिर कटने पर शाह क्रुद्ध होकर सफ़ेद हाथी पर चढ़ गया, और सेना को ललकारा। शत्रु-दर्प ने भयानक धावा बोल दिया। यह देख रावलजी ने कहा—"वीरो, अब मरने-मारने की ठान लो, और जीत की आशा त्याग दो।" पुंडीर पर सारी

शत्रु सेना टूट पड़ी थी, पर उसका साहस देखने योग्य था। उसने कठिन मार मारी, और अंत में वह खेत रहा। उस दिन का युद्ध समाप्त हुआ। तीसरे दिन जैतराव प्रमार श्वेत वस्त्र पहन और श्वेत हाथी पर सवार होकर समस्त सेना का नेता बना। उसके दाएँ रामराय, बाएँ चामुंडराय और हरा-वल पर समरसिंह रहे। यवन-सेना ने जैतराव को ही राजा समझ उस पर भारी आक्रमण कर दिया। जैतराव दोपहर तक के युद्ध में मारा गया। अब चामुंडराय ने तिरछे रुख धावा किया। एक बार यवन-दल विचिलित हो गया। यह देख शाह अपनी सेना को पीछे हटाकर ले गया। अब उसने तीस-तीस हज़ार चुने हुए सवारों को चार दल बना कर चौहान-सेना पर आक्रमण करने की आज्ञा दी। सेनापतियों को आज्ञा थी कि घोर युद्ध का अवसर न आने दो। मौका बचाकर पीछे हटते रहो। शाम तक यही खेल होता रहा। यवन दल आगे बढ़ता और पीछे हटता रहा। संध्या होते-होते यवन-दल एकदम भाग खड़ा हुआ। यह देख चौहान सेना भूखे सिंह की भाँति उस पर टूटी पड़ी पृथ्वीराज ने अपना धनुष सँभाला, और ताक-ताककर बाण छोड़ने लगे। यह देख अवसर पा सुलतान अठारह हज़ार चुने हुए सवार ले तीर की भाँति राजा के ठीक सम्मुख टूट पड़ा, और राजा के हाथी को घेर लिया। यह देख जैतराव ने छत्र अपने सिर पर धारण कर लिया। यवन-दल ने भीषण रूप में जैतराव को राजा समझ घेर

लिया। अंत में वीरवर जैतराव और चामुंडराय दोनों ही उस भयानक आक्रमण में काम आए। अब प्रसंगराय खीची ने छत्र सिर पर धारण कर लिया। यह देख शाह खीझ गया। उसने समझा था कि राजा मारा गया। इतने में राजा ने घोड़े पर चढ़कर समरसिंह के पास जाने का उपक्रम किया, पर घोड़ा अड़ गया। होनहार प्रबल थी। उधर शाह ने राजा को पहचानकर उन्हें चारों ओर से घेर लिया। धरो-पकड़ो करती हुई शाही सेना राजा पर टूट पड़ी। समरसिंह ने दूर से यह देखा, तो वह मार-काट करते वहाँ तक आए, और सब सरदार भी वहीं जुट गए। अब किसे प्राणों का मोह था। शाह भी वहीं आ जुटा। भारी समर हुआ, और रावलजी वहीं खेत रहे। पृथ्वीराज गस गए। यह देख पृथ्वीराज ने दो लाख मूल्य के कुंडल कानों से निकालकर गुरुराम पुरोहित को दिए, और कहा—"आप दिल्ली जाकर कुमार की रक्षा कीजिए।" ज्यों ही गुरुराम लौटे, एक यवन ने एक ही हाथ में उनका सिर धड़ से जुदा कर दिया। उसने राजा को कुंडल देते देख लिया था।

गुरु की इस भाँति हत्या होते देख राजा क्रोध और क्षोभ से थरथर काँपने लगे। पर अब क्या हो सकता था। उनके पास कोई सामंत जीवित न था। केवल सौ-पचास सिपाही थे, जो प्रत्येक क्षण कम हो रहे थे, और यवन दल टिड्डी की भाँति वेग से उमड़ा चला आ रहा था। शाह ने ललकारकर कहा—

"पृथ्वीराज, कमान रख दो।" पर पृथ्वीराज ने न सुना। उसने उजबक खाँ को हुक्म दिया कि राजा की कमान छीन ले। यह प्रबल धनुर्धारी था। उसकी कमान अठारह भार की थी, और तरकस में तेरह सौ तीर थे। वह अठारह भार की लुंगी बेधता था। राजा के पास एक ही तीर बचा था, उसी से उन्होंने उसे मार गिराया अब उनके तरकस में तीर न था। सहस्रों योद्धाओं ने शस्त्रों के आघात से कमान काट दी। अब उन्होंने तलवार निकाली। वह भी टूट गई। तब कटार निकाली। अंत में एक भीमकाय यवन-सरदार ने गले में कमान डाल कर राजा को घोड़े पर से खींच लिया। राजा गिर गए, और वह कसकर बाँध लिए गए। दस पाँच राजपूत जो बचे थे, कट मरे। एक भी वीर जीवित न लौटा।

राजपूत-छावनी लूट ली गई, और उसमें आग लगा दी गई। शाह ने फीरोजखाँ को राज्य दे उसी दिन पृथ्वीराज-सहित गज़नी प्रस्थान किया।

श्रावण शुक्ला २ सोमवार संवत ११५८ के दिन यह शोक-पूर्ण चिरस्मरणीय घटना घटी, और एकादशी को यह समाचार दिल्ली पहुँचा। नगर में हाहाकार छा गया संयोगिता ने सुनते ही शरीर त्याग दिया। पृथाकुमारी ने शांत भाव से पति की मृत्यु का समाचार सुना, और वह शांत भाव से सती हो गई। उसी के साथ सहस्त्रों राजपूतनियों ने अग्नि-प्रवेश किया।

गज़नी में राजा को महल के दक्षिण पार्श्व में रक्खा गया

हुजाबखाँ उनका निरीक्षक नियत किया गया। दस हिंदू सेवक राजा की सेवा के लिए नियुक्त किए गए। राजा ने अन्न-जल त्याग दिया। शाह ने स्वयं आकर समझाया, तो राजा क्रोध से आँखें गुरेर कर शाह को देखा। इस पर क्रुद्ध हो शाह ने उनकी आँखें निकाल डालने का हुक्म दे दिया। राजा को मुश्कें कसकर धरती पर पटक दिया गया, और उसी क्षण उनकी आँखें निकाल ली गईं। इस प्रकार वह महावीर, प्रतापी, साहसी दिल्ली-पति अंधे और लाचार हो भूखे और प्यासे उस यवनपुरी में दिन काटने लगे।

(१०)

हाड़ा हम्मीर पृथ्वीराज का एक वीर सामंत था। वह किन्हीं कारणों से पृथ्वीराज से बिगड़कर काँगड़े का अधिपति बन गया था। युद्ध-यात्रा के समय राजा ने उसे मनाने के लिये कवि चंद को भेजा था, पर हम्मीर ने उसे धोखा देकर देवी के मंदिर में बंद कर दिया, और स्वयं शाह की सेना में जा मिला। दैवयोग की बात है कि इस सर्वनाशकारी युद्ध के अवसर पर राजा का प्रधान मित्र सलाहकार कवि चंद काँगड़े के मंदिर में ही बंद रहा। जब कवि चंद का मंदिर से छुटकारा हुआ, तब उसने सुना कि दिल्ली का तो नाश हो गया। वह धावे पर धावे मारता दिल्ली पहुँचा। नगर में सन्नाटा था। दिल्ली की दुर्दशा देख उसकी छाती फटने लगी। उसने वीरासन से बैठ दो महीने पंद्रह दिन में सात हजार छंदों में

पृथ्वीराज-रासो लिखा, और अपने ज्येष्ठ पुत्र को पढ़ाया। इसके बाद अपना इष्ट बीज-मंत्र सुनाया, और सब माया-मोह छोड़ ग़ज़नी की राह ली।

उसने साधु के वेश में यात्रा की। ग़ज़नी पहुँचकर उसने देखा, नगर के बाहर कोसों तक हाथी-घोड़े बँधे हैं। फ़ौजें पड़ी हैं। मियाँ लोग नमाज़ें पढ़ रहे हैं। शहर में चहल-पहल है। वह भीड़ को पार करता हुआ राजद्वार तक पहुँच गया। देखा, बहुत-से शस्त्रधारी योद्धा पहरे पर हैं उसे देख एक ने पूछा—"कौन हो?"

"हिंदू फ़क़ीर हूँ, बहुत काम जानता हूँ, कवि भी हूँ गाना-बजाना, नाचना, मारण, मोहन, उच्चाटन, वशीकरण सभी कुछ जानता हूँ।"

एक द्वारपाल ने उसे पहचानकर कहा—"तू कवि चंद है, ज़रूर फ़साद करेगा।"

यह सुन कवि चंद वहाँ से खिसक गया। इधर-उधर घूमने लगा। जब शाम को शाह हदफ़ खेलकर घोड़े पर चढ़कर लौटा, तब वह बीच मार्ग में खड़ा हो गया। सिपाहियों ने रोका, पर उसने हाथ उठाकर कहा—"हे राजाओं के तेज को नष्ट करनेवाले शाह, यह कवि चंद तुमको आशीर्वाद देता है।" शाह ने उसे पास बुलाया और कहा—"तुम राजा के दोस्त और कवि थे, मगर युद्ध में कहाँ थे?"

कवि ने सब आप-बीती सुनाई और आँखों में आँसू

भरकर कहा—"जब मेरा स्वामी ही नहीं, तब मेरे जीवन को धिक्कार है। बस, एक नजर अपने स्वामी को क़ैद करने वाले को देखने की इच्छा से आया था। वह इच्छा अब पूर्ण हो गई। अब बद्रिकाश्रम जाता हूँ।"

शाह ने कहा—"बेशक तुझे अफ़सोस होगा, मगर खैर, मैं कल तुझसे बात करूँगा।" इसके बाद उसकी पहुनाई का हुक्म दिया। राजनी में एक भीम-नामक खत्री रहता था। उसके सुपुर्द कवि का आतिथ्य किया गया। उसने कवि का बड़ा आदर-सत्कार किया। कवि ने उससे बिलकुल एकांत एक स्थान माँगा, और वेदी रच देवी का अनुष्ठान कर होम रचा।

दूसरे दिन अच्छे वस्त्र पहन कवि शाह के दरबार में गया। शाह के सरदारों की इच्छा न थी कि वह कवि को दरबार में आने दे। उन्होंने उसे बहुत रोका। शाह ने कवि को आने की आज्ञा दे दी। सम्मुख आने पर शाह ने कहा—"कहो, क्या चाहते हो?"

"एक चीज माँगने आया हूँ।"

"पृथ्वीराज के सिवा जो चाहो, माँगो।"

"मेरे लड़कपन में राजा ने शब्दबेधी बाण से सात घड़ियाल गोल चक्र में रखकर फोड़ने की प्रतिज्ञा की थी, उसे पूर्ण करा दें।"

"पर वह इस वक्त, अंधा और भूखा लाचार पड़ा है, कैसे तीर चला सकता है?"

"शाह वचन दे चुके हैं।"

शाह ने हँसकर कहा—"अच्छी बात है राजा को उज्र न हो, तो मैं राजी हूँ। यह भी एक ख़ास तमाशा होगा।" इसके बाद उसने एक अफ़सर के साथ कवि को राजा के पास क़ैदख़ाने में भेज दिया।

राजा एक साधारण कमरे में साधारण बिछौने पर करुणा की मूर्ति बने बैठे थे। उन्हें देखते ही कवि की छाती फटने लगी। कवि ने कड़ा जी करके उन्हें आशीर्वाद दिया, पर वह बैठे ही रहे। कुछ न बोले। तब कवि ने कहा—"महाराज, इस विपत्ति-काल में सेवक से नाराज न हूजिए। मेरा अपराध नहीं। मुझे हम्मीर ने छल से देवी के मंदिर में क़ैद कर दिया था।" इसके बाद उसने कहा—"राजन्, उस दिन की बात याद है जब अँधेरी रात थी, हाथों हाथ न सूझता था, आपने एक ही बाण में उल्लू को मार गिराया था। और, सात घड़ियाल एक ही बाण में बेधने का वचन दिया था। आज उसे पूरा कीजिए।"

राजा कवि का अभिप्राय समझ गए। कुछ ठहर कर कहा—"यह तो ठीक है, पर मैं अत्यंत कमज़ोर हूँ, फिर शाह के अधीन हूँ, यदि शाह स्वयं आज्ञा दें, तो स्वीकार है, नहीं तो नहीं। समय ही उल्टा है।" यह कहते-कहते राजा की आँखों से जल बरसने लगा।

कवि ने कहा—"स्वामी, साहसी और वीर लोगों को सदा ही समय है। कातर न हों।"

बाहर आकर कवि ने शाह से कहा—राजा केवल आप ही की आज्ञा से बाण छोड़ने को राजी हैं।"

शाह ने हँसकर कहा—"अच्छा हम भी यह तमाशा देखेंगे।" इसके बाद उसने समस्त दरबारियों को सूचना दी। प्रबंध किया गया। सात हाँडी गोल चक्र में लटका दी गई। शाह सरदारों-सहित एक उच्च आसन पर आ बैठा। पृथ्वीराज लाए गए। कवि ने निवेदन किया—"यदि शाह ठीक निशाना देखना चाहते हैं, तो राजा को उन्हीं का धनुष-बाण दिया जाय।" यह प्रार्थना भी स्वीकार की गई। पृथ्वीराज ने धनुष पर बाणचढ़ाया। कवि ने कहा—"यह चूके तो, चूके।" इसके बादशाह से निवेदन किया—"अब आप आज्ञा दीजिए।" शाह ने उच्च स्वर से कहा—"छोड़ो।"

कठिनाई से 'छोड़ो' शब्द उसके मुह से निकला था कि बाण शाह के गले, तालु, दाँत, जीभ सब को फोड़ता हुआ पार निकल गया, और शाह पुण्य-क्षय नक्षत्र की भाँति उच्च आसन से गिरकर छटपटा कर ढेर हो गया। यह देख उपस्थित जनता में हाहाकार मच गया। जब तक लोग दौड़ें, कवि ने जूड़े से कटार निकाल अपना पेट चाक कर लिया फिर अद्भुत धीरज से वही कटार राजा को दी। राजा ने गोविंद का नाम लिया, और कलेजे में भोंक ली।